एक
मौत
प्रति मिनट

डॉ0 रमन कक्कड़

लेखक एवं प्रकाशक : डॉ० रमन कक्कड़, (टी.बी. व छाती रोग विशेषज्ञ)
एम.बी.बी.एस., डी.टी.सी.डी.,
593, सैक्टर-16, फरीदाबाद-121 002
हरियाणा, भारत।
दूरभाष : 0129–5283198

प्रथम संस्करण : महात्मा गाँधी जन्म दिवस, 2 अक्तूबर, 2002
© कॉपीराईट : लेखक

एक मौत प्रति मिनट

लेखक : डॉ० रमन कक्कड़

"**A Death Every Minute**" अंग्रेजी पुस्तक
का हिन्दी अनुवाद :
श्रीमती सुधा त्यागी, प्रिंसिपल (रिटायर्ड)
बी.एम.वी.बी., लाजपत भवन, नई दिल्ली

पुस्तक की समस्त साज-सज्जा : श्री नीरज ग्रोवर

सम्पादक : श्री प्रदीप सप्रा (अंग्रेजी पुस्तक)
व्यंग्य चित्रकार : कुमारी राजेन्द्र कौर

उन सभी रोगियों को समर्पित,
जिनकी मृत्यु का कारण 'टी.बी. की बीमारी' को माना गया .....

..... जबकि उनकी मौत का वास्तविक कारण यह रोग नहीं बल्कि इस रोग के बारे में 'जानकारी का अभाव' था।

हालाँकि टी.बी. के जीवाणुओं की कार्य-प्रणाली सर्वत्र एक सी है, परन्तु यह पुस्तक टी.बी. की समस्या को केवल भारतीय परिपेक्ष में ही दर्षाती है।

यह पुस्तक एक कुशल चिकित्सक-सलाह का विकल्प न है और न हो सकती है।

बस, थोड़ी सी मदद.....

जी हाँ, आपके द्वारा दी गई थोड़ी सी मदद भी किसी व्यक्ति की जान बचा सकती है, उसके लिये जीवन-रक्षक सिद्ध हो सकती है। मंदिर, मस्ज़िद, गुरूद्वारे व चर्च में दान देने से कहीं उपयुक्त होगा कि आप उस व्यक्ति की मामूली सी सहायता कर उसे जीवनदान दें। आपकी सहायता का उस व्यक्ति से योग्य पात्र कोई दूसरा हो ही नहीं सकता। क्योंकि वह गरीब है, अनपढ़-गँवार है, अनजान है। उसके सभी सगे-सम्बन्धी उसे बोझ मानने लगे हैं, बेवजह उससे नफरत करने लगे हैं। एक-एक कर उसके सभी मित्र भी उसका साथ छोड़ चुके हैं। वह बिल्कुल अलग-थलग पड़ गया है, अकेला व निराश।

जबकि वह बिल्कुल निर्दोष है। बस, किस्मत का मारा है। बेचारे को एक ऐसे रोग ने जकड़ लिया है जो चिकित्सा-जगत का सबसे पिछड़ा हुआ रोग है तथा जिस बारे आज भी हमारे समाज में तरह-तरह के भ्रम व अन्धविश्वास व्याप्त है।

यदि आपने समय रहते उसका मार्गदर्शन न किया तो उस मासूम से यकीनन कुछ ऐसी गलतियाँ हो जाएंगी जो दिखने में बहुत मामूली होंगी परन्तु वे उसकी जान लेकर रहेंगी तथा उसके बच्चों का जीवन भी नष्ट करके छोड़ेंगी।

इस धरती पर पुण्य कमाने का इससे बढ़िया उपाय आपके समक्ष दूसरा कोई न है, न हो सकता है।

टी.बी. के एक रोगी को अपनाएँ।

6 *माह के लिये।*

हर सप्ताह उसे मिलें, उसका हाथ थामें, उसकी बात सुनें, रोग के बारे उसे पूरी जानकारी दें, उसका मार्गदर्शन करें। उस गरीब को धन से कहीं ज्यादा जरूरत है - जानकारी की ! मार्गदर्शन की ! सावधानी की ! उचित इलाज़ की ! आपके प्यार की ! सही दिशा की !

याद रखें आपकी सहायता का यह सिलसिला 6 महीने तक जारी रहे; तब तक, जब तक वह पूरी तरह स्वस्थ न हो जाए। केवल एक बार दी गई मदद टी.बी. में बेकार सिद्ध होती है।

टी.बी. के एक रोगी को अपनाएँ

व भारत वर्ष की टी.बी. के खिलाफ जंग में शामिल हों। आगे बढ़ें व अपने गांव, कस्बे व शहर में टी.बी. के प्रति जागरूकता फैलाने की चुनौती को स्वीकार कर उसका बीड़ा उठाएं। देश भक्ति के इस सुनहरे अवसर को हाथ से जाने न दें।

इस पुस्तक को पढ़ने के बाद आप स्वयं यह फैसला करें कि क्या यह उचित होगा यदि :-

- ✓ इस पुस्तक को आपके इलाके का हर टी.बी. रोगी पढ़े ?
- ✓ तथा उसके परिवार का प्रत्येक सदस्य, मित्र व पड़ोसी पढ़े ?
- ✓ प्रत्येक डॉक्टर, दवा विक्रेता व स्वास्थ्य कर्मचारी पढ़े ?
- ✓ अपकी प्रोदशिक भाषा में भी इस पुस्तक का अनुवाद किया जाए ?
- ✓ तथा उस भाषा के किसी विद्वान से लेखक का सम्पर्क करवाने का नेक काम आपके ही द्वारा अन्जाम दिया जाए ?
- ✓ आपके द्वारा इस पुस्तक की कुछेक कॉपियों का आर्थिक उत्तरदायित्व लिया जाए ?
- ✓ उनको आपके ही द्वारा अपने इलाके के मरीजों इत्यादि में बाँटा जाए ?

यदि आपका उत्तर हाँ है तो

डायल करें : **0129 - 5283198**

यह पुस्तक जनता-जनार्दन के लिये है, न कि मुनाफ़े के लिये।

टी.बी. का प्रकोप

हर एक मिनट में एक भारतवासी टी.बी. से मर जाता है।

यदि भारत के सब टी.बी. रोगी एक स्थान पर एकत्रित दो जाएं, तो एक दूसरी दिल्ली बस जाए ! हमारे देश में इन मरीजों की संख्या करीब डेढ़ करोड़ है - दुनिया के अन्य देशों के मुकाबले सबसे अधिक ! प्रतिदिन 20,000 भारतीय नागरिक टी. बी. से संक्रमित होते हैं, 5000 में बीमारी पनपती हैं तथा 1300 से अधिक लोग मृत्यु का ग्रास बनते हैं।

यह महामारी हमारे देश की जड़ों को खोखला करती जा रही है। प्रतिवर्ष अनगिणत बच्चे अनाथ हो जाते हैं, 3 लाख बच्चों की पढ़ाई छूट जाती है तथा 1 लाख बीमार औरतें समाज में व्याप्त छुआ-छूत की भावना का शिकार हो कर, तिरस्कृत कर दी जाती हैं।

यह बीमारी अधिकतर कामकाजी अम्र के लोगों में पनपती है। 75% रोगी, 15 से 50 वर्ष तक की आयु के व्यस्क होते हैं। ज़रा सोचें, हमारे देश का एक करोड़ से अधिक कामगार इससे पीड़ित पड़ा है, चाहे वह किसान हो या मज़दूर, कर्मचारी हो या दुकानदार, शिक्षक हो या अभिभावक। अनुमान है कि हर वर्ष हमारे देश को 17 करोड़ कार्य दिवसों का हर्जा होता है तथा 12000 करोड़ रूपए की क्षति पहुंचती है।

विश्व भर में 90 लाख नए मरीज़ सालाना इस बीमारी से ग्रस्त होते हैं तथा 30 लाख लोग अपनी जान गवांते है। लेकिन यह महामारी अधिकतर पिछड़े हुए देशों की ही समस्या है। इससे ग्रसित 95% मरीज तथा 98% मौतें गरीब देशों में ही होती हैं। इस आपदा का एक तिहाई बोझ भारत वहन करता है यानि दुनिया का हर तीसरा टी.बी. का मरीज़, भारतवासी है।

एक जमाना था जब टी.बी. की कोई दवा न थी - यह एक भयानक लाइलाज रोग था।

लेकिन आज टी.बी. का इलाज है, यकीनन है ! पिछले 40 वर्षों से इसके निवारण के लिए उत्तम दवाएं उपलब्ध हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि फिर भी इससे बीमार होने तथा मरने वालों की संख्या घटने के बजाए, बढ़ती ही जा रही है।

टी.बी. से होने वाली हर मौत को रोका जा सकता है! थोड़ी सी जानकारी द्वारा !

अत: हर भारतवासी का कर्तव्य है कि वह टी. बी. के बारे में कुछ बुनियादी जानकारी रखे!

विषय-सूची

1. आभार 13

2. भूमिका 16

3. छोटी सी एक भूल 16

बीमारी की पहचान

4. सबसे महत्वपूर्ण पहला कदम : शक पड़ जाना 18

5. बीमारी की पहचान में देर 21

6. टी.बी. का शक कब और कैसे हो ? 27

इलाज के बारे में

7. मैं अब बिल्कुल ठीक हूँ 28

8. भिन्न भिन्न नुस्खे 33

9. दिशाहीन विश्व-विज्ञान 40

10. रोगी के मौलिक अधिकार 48

11. आधे-अधूरे इलाज का चक्रव्यूह 53

छुआछूत की भावना

12. प्यार का चमत्कार 59

13. झूठी व मनघड़ंत धारणाएँ 67

डॉक्टर व मरीज़ का रिश्ता

14. मरीज़ की चिट्ठी, डॉक्टर के नाम 74

15. डाक्टर का जवाब 76

टी.बी. के मरीज़ की रामायण

16. मरीज़ द्वारा बरती जाने वाली सावधानी 78
17. वहम से छुटकारा 80
18. मरीज़ भाईयो, सावधान ! ध्यान से सुनो ! 83
19. नीम हकीम खतरा-ए-जान 85
20. खतरा 85
21. हैलो कैमिस्ट ! 86
22. दवाओं के बुरे असर : परवाह नही ! 87
23. इलाज शुरू होने के बाद 88

डॉक्टर की अंर्तआत्मा की आवाज़

24. डॉक्टर की चिट्ठी, अपने गुरू के नाम 89
25. टी.बी. का शक कब और कैसे हो ? 91
26. इनमें से कौन सा मरीज़ टी.बी. से पीड़ित हो सकता है ? 92
27. फेफड़े की टी.बी. को कैसे पहचाना जाता है ? 93
28. टी.बी. को पहचानने वाले टैस्ट 94
29. बच्चों में टी.बी. का पता कैसे लगे ? 99
30. हर एक मिनट में एक भारतवासी के टी.बी. से मारे जाने के मुख्य कारण क्या हैं ? 101

प्रश्नोत्तर

इन प्रश्नों का उत्तर कौन से पृष्ठ पर मिलेगा ?

1. भारत में टी.बी. कितनी फैली हुई है ?..... 7
2. क्या टी.बी. भगवान का श्राप है ? 80, 69
3. क्या इसका कोई इलाज नहीं है ? 80, 69
4. क्या यह पुश्तैनी या पारिवारिक रोग है ? 82, 69
5. टी.बी. किस कारण होती है ? 69
6. टी.बी. कैसे फैलती है ? 69, 70, 71
7. क्या टी.बी. एक मरीज से दूसरों को बहुत जल्दी लग जाती है ? 70, 71
8. ये कीटाणु यदि हमारी सांस के रास्ते फेफड़े में पहुंच ही गए, तो क्या शर्तिया हमें बीमारी लग जायेगी ? 69, 70
9. टी.बी. का शक़ कब और कैसे पड़े ? 25, 26, 27, 91
10. किन-किन लागों में टी.बी. होने का खतरा ज्यादा होता है ? 25, 26, 27, 91
11. टी.बी. की पहचान के लिये कौन-कौन से टैस्ट होते हैं ? ..... 94 - 98
12. इसके इलाज के लिये क्या हर मरीज़ को अस्पताल में भर्ती होना जरूरी होता है ? 81, 70
13. क्या टी.बी. की दवाएँ महंगी है ? कितना खर्चा आता है ? 80, 69

14. इलाज कितना लम्बा चलता है ? 81, 76, 29

15. दो महीने के इलाज के बाद ज्यादातर मरीज़ दवा लेना क्यों बन्द कर देते हैं ? 29, 30

16. टी.बी. के मरीज़ को क्या-क्या सावधानी बरतनी चाहिये ? 78, 79

17. छूआछूत की भावना का, मरीज़ पर क्या असर पड़ता है ? 61, 62

18. समाज में टी.बी. के प्रति क्या-क्या अंधविश्वास फैले हुए है ? 80-82, 69-71

19. भारत में डॉक्टरों द्वारा टी.बी. का कैसा इलाज किया जा रहा है ? 101, 36, 37

20. देश में सरकारी इलाज की क्या स्थिति है ? 50, 51

21. भारत के प्रत्येक डॉक्टर को कौन-कौन सी बातों का खास ध्यान रखना चाहिए ? 89-103

22. डाट्स क्या है ? 30

23. टी.बी. पर अनुसंधान की क्या स्थिति है ? 45-47

24. टी.बी. के एक साधारण मरीज पर दवाएँ कब, क्यों और कैसे बेअसर हो जाती है ? 37, 38, 55-57

25. भारत के विकास पर टी.बी. का क्या प्रभाव है? ... 7

26. बच्चों में टी.बी. का शक तथा उसकी पहचान कैसे की जाती है ?99

27. टी.बी. का शक कब करें - कुछ उदाहरण । 92

28. भारत में टी.बी. के प्रकोप का मुख्य कारण क्या है ? 101-103

आभार

1. टी.बी. के क्षेत्र में प्रख्यात डॉक्टर जिन्होंने मुझे अपने संवादों, भाषणों, सभाओं और विचार-गोष्ठियों से इस विषय को समझने में मेरी सहायता की : स्वर्गीय डा० एस.पी. पामरा, स्वर्गीय डा० एस.पी. खन्ना, डा० राजेश चावला, डा० राजीव गोयल, डा० पी.के. मंगला, डा० देवी नायागम, डा० जे.के. सामरिया, डा० वी.के. अरोड़ा, डा० जे.एन. बनवालीकर और ऐसे बहुत से दिग्गज वैज्ञानिक।

2. वे सभी मरीज और उनके परिवार के सदस्य, जिन्होंने मुझ पर विश्वास कर अपने दिल की बात बताई।

3. मेरी पत्नी डा० विजय, मेरी बेटी दिव्या, डा. राजीव अरोड़ा व दिया।

4. मीडिया की जानमानी हस्तियाँ जिन्होंने मेरे लेखों व विचारों को प्रकाशित कर प्रोत्साहित किया: श्री माईक वूलरिज (बी.बी.सी.), श्री विवेक (स्टार न्यूज़), श्री बिनोय (स्टार न्यूज़), प्रोफेसर सी.डी. वर्मा (हिन्दुस्तान टाईम्स), श्री पवन पंडिता (हिन्दुस्तान टाईम्स), श्री नवीन धमीजा (दैनिक भास्कर), श्री राजू साजवान (दैनिक जागरण), श्री अनिल निगम (अमर उजाला), श्री एम.एल. कपूर (टाईम्स ऑफ इण्डिया), श्री प्रमोद गोयल (पंजाब केसरी), श्री हरीश गौड़ (प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया), श्री एम.डी. गायकवाड़ (ऑल इण्डिया रेडियो), श्री आरूप घोष (एन.डी.टी.वी) कुमारी शबानी कूपर (एन.डी.टी.वी.), डा० सुदिप्तो रॉय (जर्नल ऑफ इंण्डियन मैडिकल एसोसिशन, कलकत्ता), श्री शुभ्रांशु चौधरी (बीबीसी), श्री सुभाष चौधरी (हिन्दुस्तान), श्रीमति अन्जु दुआ जैमिनी, कु० सीमा नयाल (हिन्दुस्तान), कु० साहिबा ज़ैदी (दैनिक जागरण), श्री ओमप्रकाश एवं श्री गीत चतुर्वेदी (दैनिक भास्कर), श्री सोमेश एच. शर्मा, श्री धर्मपाल, श्री संजय, श्री शैलेन्द्र, श्री अजय बोथरा, श्री अमरनाथ बाघी, श्री भीमसेन मुखी, श्री विश्व बंधु, श्री जितेन्द्र गुप्ता, श्री जितेन्द्र कुमार, श्री मनोज कुमार मंडल, श्री जी.एल. वधवा, श्री शिव कुमार ओझा, श्री नवीन गुप्ता, श्री अदित्या नरेन्द्र, सरदार एम.एस. रजनीकर, श्री एम.सी. बोथरा, श्री सतीश कुमार, श्री

ज्योति, श्री राजन ओझा, श्री नमित गुप्ता और हरियाणा मैडीकल जर्नल के सम्पादकगण।

5. प्रभावी टाईपिंग के लिए श्रीमान सी.टी.एन. चिदम्बरम, श्रीमान नवीन कुमार रत्रा तथा श्री बिजेन्द्र गुप्ता।
6. पुस्तक की साज-सज्जा और संयोजन के कार्य के लिए श्री नीरज ग्रोवर।
7. कलात्मक सलाह और कार्टून के लिए कुमारी राजिन्द्र कौर ।
8. पुस्तक के हिन्दी अनुवाद के लिए श्रीमति सुधा त्यागी, प्रिंसिपल (रिटायर्ड)
9. पेशेवर चिकित्सक

वे सभी डॉक्टर जो मरीजों से होने वाले अपने खट्टे-मीठे अनुभव व निष्कर्ष मुझसे बांटते रहे तथा जानकारी फैलाने की गतिविधियों में रूचि लेकर मुझे प्रोत्साहित करते रहे:

फरीदाबाद इण्डियन मैडीकल एसोसिएशन : डा० आर.एल. मोगा, डा० ए.एन. भयाना, डा० एम.सी. गुप्ता, डा० एस.एस. बंसल, डा० सीमा बंसल, डा० एस.वी. गुप्ता, डा० वीना गुप्ता, डा० पी.के. त्यागी, डा० वी.के. चोपड़ा, डा० पी.के. बब्बर, डा० ए.के. कुन्डु, डा० एन.के. जिन्दल, डा० पी.एस. आहुजा, डा० आर.सी. अरोड़ा, डा० अनिल डोडेजा, डा० आर.एस. वर्मा (प्रधान रोटरी क्लब), डा० आर.आर. गोयल, डा० एस.पी. जैन, डा० एस.सी. कपूर, डा० एस.बी. सूद, डा० जी.के. खुराना, डा० नरेन्द्र पाल, डा० एस.डी. पाराशर, डा० भुपेन्द्र सिंह, डा० लाल सिंह, डा० विनय जिंदल, डा० जी.एल. अरोड़ा, डा० जी.पी. सेठ, डा० एस.के. मंगल, डा० नरेन्द्र घई, डा० एम.के. डोगरा (टेक्मसेह प्राडक्ट्स लि०), डा० वी.के. गर्ग (हैदराबाद ऐस्बेस्टस लि०) और अन्य कई सदस्य। हरियाणा स्टेट इण्डियन मैडीकल एसोसिएशन : डा० अशोक कटारिया, डा० रमेश छाबड़ा डा० सुभाष खन्ना, डा० अनिल अग्रवाल इत्यादि। एसोसिएशन ऑफ रोहतक मैडीकोस ऑफ देहली : डा० अवतार कृष्ण तथा अन्य। नेशनल लेवल इण्डियन मैडीकल एसोसिएशन : डा० प्रेम अग्रवाल, डा० टी.एन. मेहरोत्रा। अन्य डॉक्टर : डा० अशोक ढींगड़ा, डा० श्रीमति रेनु कक्कड़, डा० आर.सी. जिलोहा, डा० पी. एन. ढींगड़ा, डा० सी.एस. गुप्ता, डा० एस.एल. गोयल, डा० रमेश गम्भीर,

डा० राजीव अग्रवाल, डा० अमित कोलिन्ज़ (वर्ल्ड विज़न ऑफ इण्डिया)।

10. अंग्रेजी साहित्य के क्षेत्र में प्रख्यात हस्तियाँ :

श्री डब्ल्यू.सी. खन्ना, कुमारी रूचिका कथूरिया, श्री एस.के. दुआ।

11. जानकारी फैलाने के इस निरन्तर अभियान के दौरान समाज के हर वर्ग के बहुत से लोग लगातार श्रमदान देते आए हैं तथा जाने-अनजाने इस पुस्तक में लिखे जा रहे विचारों में नि:स्वार्थ सहायता प्रदान करते आए हैं: इंजीनियर गुरदयाल सिंह पिंगलवाड़ा, श्री राजेन्द्र प्रसाद बैरवा, श्री नरेन्द्र शर्मा, श्री देव, श्री नीरज ग्रोवर, श्री एल.डी. अरोड़ा, श्री एस.के. वर्मा, श्री जगदीप लूथरा, श्री एस.पी. चाबा, श्री पी.एस. सपरा, श्री विजय शर्मा (एडवोकेट, उच्च न्यायालय, दिल्ली), श्री संजय सुधीर आई. एफ.एस., श्री वी. सुन्दर (प्रधानमंत्री कार्यालय), श्री विजेन्द्र कुमार आई.ए.एस., सरदार कुलदीप सिंह (प्रधानाचार्य), तथा फरीदाबाद शहर के दर्जनों विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के आचार्यगण श्री सुखबीर सिंह आई.ए.एस., डा० जयन्त मल्होत्रा (अमरीका), डा० इन्द्रजीत कौर (पिंगलवाड़ा, अमृतसर), श्री सुन्दर लाल बहुगुणा (पर्यावरण के क्षेत्र के क्रांतिकारी तथा चिपको आंदोलन के नेता), न्यायधीश आर.एस. नरूला, सरदार के.एस. नागी, गुरूद्वारा सुखमणी भवन, सेक्टर-16, फरीदाबाद, श्री विनोद कुमार (कार्यकारी निर्देशक, थॉमसन प्रेस), श्री सेड्रिक (सहारा), श्री अनुराग रस्तोगी, श्री ए.एस. चौधरी (संत निरंकारी मंडल), श्री वी. आनन्दराजन (प्रधानमंत्री कार्यालय), श्री अजय बिसारिया (प्रधानमंत्री कार्यालय), कर्नल पी.एस. वासुदेवन (ए.वी.एस.एम.), श्री कैश सूद (कैनेडा), श्री सी.एस. गोयल, श्री मोहित भंडारी, श्री सुभाष त्यागी (मैडिकल टैक्नालोजिस्ट), श्री महेन्द्र कुमार शर्मा, श्री ए. के. कश्यप व श्री संजीव नागपाल (ए. बी. बी.)

12. मेरी माँ, मेरे भाई, ले० कर्नल रंजन कक्कड़, ले० कर्नल राकेश कक्कड़ तथा मेरे परिवार के सभी सदस्य।

13. इसके अतिरिक्त, प्रदीप सपरा को धन्यवाद करना मैं कैसे भूल सकता हूँ जिन्होंने अपनी मास कम्यूनिकेशन तथा अग्रेंजी भाषा की योग्यता से निरन्तर सहायता की और कीमती समय इस अभियान को दिया।

भूमिका

25 साल के अपने डाक्टरी तजुर्बे के दौरान हर तरह के अनकों टी.बी. के मरीजों से लगातार आदान-प्रदान से एक बात तो मेरी समझ में बहुत पहले ही आ गई थी कि टी.बी. की बीमारी के प्रति हमारी मौलिक सोच में शायद भारी कमी है। अब सवाल यह था कि क्या ? कई ऐसी घटनाएँ हुई जिनकी बदौलत इस मामले में सारा धुंधलापन धीरे-धीरे साफ होता चला गया। ऐसी केवल दो घटनाएँ लिख रहा हूँ जो कि मेरे इस पुस्तक को लिखने के मकसद पर शायद कुछ रोशनी डाल सकें :-

1. छोटी सी एक भूल :

मैं किसी के घर के आंगन में दरी पर बैठा हुआ था। बहुत से दूसरे लोग भी बैठे थे जो कि ज्यादातर पढ़े-लिखे, सम्पन्न तबके के दिखते थे। वातावरण बहुत ही गमग़ीन था। बीती रात उस घर के मालिक की मौत हो गई थी। सब लोग दु:खी और उदास थे तथा दबी-दबी आवाज में बातें कर रहे थे। मैं चुपचाप बैठा था। सामने की दीवार पर अपनी नजर गड़ाए, सोच रहा था कि इस टूटी-फूटी दीवार की काफी दिनों से मरम्मत नहीं हुई होगी। जबसे डाक्टर बना हूँ, वह भी टी.बी. का, इतनी मौतें देख चुका हूँ कि अब मौत ज्यादा भयभीत नहीं करती।

"ऐसी जानलेवा बीमारी, वह भी ऐसे भले आदमी को ! बहुत अन्याय हुआ है !" मेरे साथ बैठा हुआ व्यक्ति अपनी अजीब सी आवाज में बोला। बोलने में उसके मुंह से ज्यादा नाक का प्रयोग हो रहा था।

"वाकई ! सबसे भयंकर बीमारी है ये। बदकिस्मती देखिए - तीन बेटियों में से एक की भी अभी शादी नहीं कर पाया था बेचारा," साथ बैठा हुआ एक बूढ़ा आदमी बोला।

मेरी दूसरी ओर बैठी एक औरत बोली, "सब किस्मत के खेल हैं, भईया। 'लिखी' को कौन टाल सकता है?"

ऐसी बातें सुनकर मन में खलबली सी मच गई।

वह फिर बोली "मैंने तो आज तक किसी को इस बीमारी से बचते नहीं देखा।"

मुझे लगा मानो किसी ने मुझे च्यूंटी मारी हो। मैं एकाएक सिहर उठा, पर चुप रहा।

इतने में नाक वाली आवाज फिर सुनाई दी, "टी.बी. का नाम सुनते ही मैंने तो सबसे कह दिया था कि वह अब बचने वाला नहीं। सब परिवार वालों को साफ कह दिया था कि अपना मन पक्का कर लो। कभी भी, कुछ भी हो सकता है।"

बस ! अब मुझसे और न रहा गया।

अनायास ही मेरे मुंह से निकल पड़ा "इनकी मौत टी.बी. से नहीं हुई।"

उसकी नाक से आने वाली आवाज़ और भी तीखी हो गई और वह बोला, "लेकिन जनाब, उनकी धर्मपत्नी ने खुद बताया था मुझे।"

"इसमें कोई शक नहीं कि उनको टी.बी. की बीमारी थी। लेकिन उनकी मौत टी.बी. से नहीं हुई," मैं बोला।

मेरी बात सुन वह बूढ़ा व्यक्ति झुंझला उठा और बोला, "मतलब क्या है आपका ?"

"उन्होंने टी.बी. की दवा बीच में ही छोड़ दी थी। दवा का कोर्स पूरा नहीं किया था। इससे अपनी जान गवाई," मैंने समझाया।

इस पर औरत हैरान होकर बोली "अरे लेकिन ये तो एक मामूली सी भूल है।"

"टी.बी. के मामले में, इलाज पूरा न करना बहुत खतरनाक सिद्ध होता है," मैंने विश्वास से कहा।

"यानि कि इतनी छोटी सी भूल उसकी मौत का कारण बन गई ?"

"जी हाँ। टी.बी. का इलाज है। यकीनन है। सब मरीज बिल्कुल ठीक हो सकते हैं। इलाज का कोर्स पूरा न करने से भयानक नतीजा निकलता है। बस ऐसी छोटी-छोटी गलतियों से ही टी.बी. के मरीज का भविष्य अंधकार में डूब जाता है।"

इस पुस्तक द्वारा मैं उन छोटी-छोटी गलतियों को उजागर करना चाहता हूँ ताकि हमारे आस-पास कोई भी टी.बी. से अपनी जान बेकार में न गवाए।

2. सबसे महत्वपूर्ण पहला कदम : शक पड़ जाना

"हे भगवान, यह इस वक्त कहां से आ पहुंचा ?" उसे अपने क्लिनिक के गेट से अंदर दाखिल होते देख मैंने सोचा। शाम के 8 बज चुके थे, क्लिनिक बंद होने का समय था। दिनभर कई तरह के टी.बी. के जिद्दी मरीजों से झक मार कर मैं थक कर चूर हो चुका था। अब हिम्मत कहां बची थी किसी वहमी से बहस करने की !

मेरे क्लिनिक में उस नौजवान का आना-जाना पिछले महीने से चल रहा था। खुद तो वह अच्छा -खासा व तंदरुस्त था। वह अपने बीमार भाई को टी.बी. के इलाज के लिए लेकर आता था। उसका भाई तो चुपचाप दवा लेता और चलता बनता। पर यह जनाब, जाने का नाम ही नहीं लेते थे। बस, उल्टे-पुल्टे सवाल पूछ-पूछकर मेरा दिमाग चाटते रहते।

लेकिन मैंने देखा कि आज वह अकेला आया था। पास आते ही बोला, "भईया आपके इलाज से काफी ठीक हैं, आज तो मैं अपने लिए आया हूं।"

उसके इस नये पैंतरे से मैं चौंका, "अच्छे-खासे हो, तुम्हे क्या हो गया ?"

"बस मेरी जांच कर लीजिए। लगता है अब मेरी बारी है, मुझे भी टी. बी. का रोग लग गया है"

"एकाएक यह ख्याल तुम्हें कहां से आ गया ?" मैंने पूछा।

"यह खांसी तो मेरा पीछा ही नहीं छोड़ रही। दीवाली से चल रही है। अब बीड़ी छोड़े हुए भी डेढ़ महीना हो चला है। सोचता हूं जांच करवा लूं आपसे, जांच से क्या बिगड़ता है !"

बड़ी मुश्किल से मैं अपनी हंसी को रोक पाया। अब उसका वहम तो दूर करना ही था, सो मैंने उसका थोड़ा-बहुत मुआयना किया, उसे स्वस्थ करार दिया तथा किसी तरह समझा-बुझाकर चलता किया।

अगले दिन सुबह-सुबह वह फिर आ पहुंचा "डाक्टर साहब, सारी रात सो नहीं पाया, एक मिनट भी आंख नहीं लगी, बस करवटें बदलता रहा। क्या आपको पक्का विश्वास है कि मुझे टी.बी. नहीं है ?" उसकी रोनी सूरत देख कर मैंने महसूस किया कि मामला कुछ गम्भीर था। बीमारी का डर उसे खाये जा रहा था। अबकी बार मैंने उसकी कमीज उतरवाकर उसकी जांच-पड़ताल की। इस औपचारिकता में पूरे दस मिनट लगाए, उसकी तसल्ली की, बैठाकर बहुत समझाया तथा नींद की कुछ गोलियाँ भी दी।

पर अगले दिन वह फिर आ गया। आते ही चुपचाप मेरे पास स्टूल पर बैठ गया "डाक्टर साहब मैंने सोचा करवा ही लूं अपने सीने का एक्स-रे, क्या बिगड़ता है" ऐसा कहते हुए उसने भूरे रंग का बड़ा लिफाफा मेरी मेज पर रखा, उसमें से एक्स-रे की फिल्म को खींचकर निकाला तथा उसे मेरे हाथ में थमा दिया।

मैंने हंसते हुए उसका एक्स-रे देखने के लिए अपनी कुर्सी को रोशनी की ओर घुमाया, "तुम्हारे जैसा वहमी इन्सान मैंने नहीं देखा, जब मैंने तुम्हे इतनी बार समझा दिया है कि ....."

अनायास ही मेरी बोलती बंद हो गई। मैं हक्का-बक्का रह गया था।

उसके एक्स-रे में दाग था, ऊपर के हिस्से में-गोल-गोल, काली-काली-कैविटी, यकीनन टी.बी. का दाग!

उस नौजवान ने अपनी बीमारी को पहचान लिया था। मैं फेल हो गया था।

उसने मुझे मात दे दी थी - मेरे ही पेशे में!

उस दिन के बाद मैंने फिर कभी ये शेखी नही बघारी कि 'हम तो सूंघकर बता देते हैं कि मरीज को टी.बी. है या नही।' मैं कई दिन तक परेशान रहा, सोचता रहा कि मैं कैसे चूक गया !

कैसे ?

क्यों ?

कई दिनों बाद, बात मेरी समझ में आई।

उसने एक काम बहुत सही किया था।

जो मैंने न किया।

उसने सही दिशा में पहला कदम उठाया था।

जो मैंने नहीं उठाया।

उसने टी.बी. का शक किया।

मैंने नहीं किया।

निष्कर्ष :

1. शक नहीं होगा तो टी.बी. नहीं पहचानी जाएगी।
2. शक करने के लिए किसी को एम.बी.बी.एस. की डिग्री की जरूरत नहीं होती।
3. गांव की एक बुढ़िया, कोई रिक्शा चालक, या अनपढ़-गंवार मजदूर, कोई भी टी.बी. का शक कर सकता है। और मामूली सी जानकारी द्वारा बीमारी को जल्दी पहचानने में मदद कर सकता है।

मैं जान गया कि थोड़ी सी जानकारी भी टी.बी. के मरीजों व उनके परिवारजनों के जीवन में बहुत बड़ा सुधार ला सकती है। लेकिन अफसोस, इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया। सरकार भी सो रही है। बस मैंने इसी क्षेत्र में कुछ करने की ठानी। पहले एक हिन्दी फिल्म बनाई, 'तीन बातें,' फिर निरंतर अखबारों में लेख और अब ये पुस्तक - केवल टी.बी. के बारे में थोड़ी सी बुनियादी जानकारी फैलाने के लिए।

बीमारी की पहचान में देर

धरती पर भगवान का साक्षात्

रमेश करीब दस माह से बीमार था और दिन पर दिन, उसकी हालत बिगड़ती ही जा रही थी। इलाज के लिए वह चार 'डॉक्टरों' के पास गया था, पर बदकिस्मती से उन सब में एक ही खास बात थी -वह चारों ही नीम-हकीम थे; उनमें से किसी के पास भी एस.बी.बी.एस की डिग्री नहीं थी। लेकिन रमेश ठहरा अनपढ़, गंवार। उस बेचारे को इन बातों की जानकारी कहां थी। उसके हिसाब से डाक्टर तो बस डाक्टर ही होता है - रूप !

इन सभी 'डाक्टरों' का एक ही दावा था - कि उनके पास हर मर्ज की दवा है, वह हर मर्ज का इलाज जानते हैं। इनमें से हर 'डाक्टर' ने उसे विभिन्न रूपों में दवाईयां दीं - कभी गोलियां, कभी इंजैक्शन, कभी फाँकने के लिए पाऊडर की पुड़िया, कभी कैप्सूल और कभी ग्लूकोज़ की बातलें चढ़ाई गईं। इस तरह हरेक ने उससे पैसे ऐंठे। बस उल्टा-सीधा

इलाज करते रहे। हालांकि रमेश को रोज़ाना बुखार रहता था, वह लगातार खांसता था और उसका वजन बहुत तेज़ी से कम हो रहा था, फिर भी ये नीम-हकीम उसे झूठी तसल्लियां देते रहे कि उसे फिक्र करने की कोई जरूरत नहीं है; जल्दी ही ठीक हो जाएगा।

लेकिन एक दिन खांसते-खांसते जब बलगम के साथ उसके मुंह से खून गिरा तो सबका माथा ठनका। उसे फौरन एक सरकारी अस्पताल ले जाया गया। आखिरकार, तब पहली बार किसी एम.बी.बी.एस. डाक्टर ने उसकी जांच की। उसने फौरन रमेश की छाती का एक्स-रे करवाया और बलगम का टेस्ट करवाया।

एक घंटे में ही नतीजा सामने आ गया। रमेश को टी.बी. हो गई थी। इतना ही नहीं, बीमारी ने एक गंभीर रूप धारण कर, उसके फेफड़ों को छलनी कर दिया था।

उसे फौरन दवाएं दी जाने लगीं।

परन्तु सही इलाज शुरू करने में बहुत देर हो चुकी थी।

तीन सप्ताह बाद, डाक्टरों के मना करने पर भी, रमेश का निराश पिता उसे घर ले आया।

कुछ ही दिनों बाद, 15 मई, 1997 को रमेश की मृत्यु हो गई।

इन चारों अयोग्य 'डॉक्टरों' ने इस गरीब की खून-पसीने की कमाई को धीरे-धीरे हड़प लिया। समय रहते उसे किसी योग्य डॉक्टर के पास न भेजा। लेकिन सबसे बड़ा जुर्म यह किया कि रमेश को किसी योग्य डॉक्टर के पास जाने से रोकते रहे - अपनी झूठी तसल्लियाँ देते रहे। इस तरह एक सीधा-सादा नासमझ मरीज़, बीमारी के जीवाणुओं द्वारा अंदर से खोखला होता रहा, उसके फेफड़े छलनी होते रहे और वे स्वार्थी और लालची नीम-हकीम उसकी जेबें खाली करते रहे।

बीमारी की पहचान में देर के कारण रमेश को अपनी जान से हाथ धोने पड़े।

टी.बी. के मामले में समय का बहुत महत्व होता है। समय पर शक हो जाना, समय पर बीमारी की पहचान हो जाना, समय पर इलाज शुरू हो जाना तथा सही समय तक इलाज चलते रहना। बस, सारा खेल ही समय का है।

रमेश बुखार में तपता रहा, खांसता रहा। वह दिन-रात तड़पता रहा - तिल-तिल कर जीता रहा। दिन, हफ्ते, महीने गुज़रते चले गये। लेकिन किसी को शक तक नहीं हुआ टी.बी. का !

दस महीने गुज़र जाने के बाद पहली बार किसी के मन में शक पैदा हुआ - यानि सरकारी डाक्टर के मन में ।

बस शक होने की देर थी - उसके बाद तो केवल एक घंटा लगा

– टी.बी. को पहचान लेने में, बलगम की जांच व एक्स-रे द्वारा।

रमेश, उसके माता पिता, बहन-भाई, रिश्तेदार, पड़ोसी या वे चारों नीम-हकीम – यदि इनमें से किसी एक को भी – जी हां, किसी एक को भी – टी.बी. का थोड़ा सा ज्ञान रहा होता, तो रमेश आज जिन्दा होता । समय रहते किसी एक को भी शक पड़ जाता तो बीमारी पकड़ी जाती। ज्यादा नहीं तो केवल इतना ही मालूम होता कि "लम्बी खांसी या लम्बे बुखार के साथ-साथ वजन का घटना टी.बी. के लक्षण हो सकते हैं।"

यह कैसी विडम्बना है ! भारत में सबसे ज्यादा फैला हुआ संक्रामक रोग है – टी.बी.। करीब डेढ़ करोड़ लोग इससे पीड़ित हैं। पांच लाख भारतवासी सालाना इससे मरते जाते हैं – एक, प्रति मिनट। फिर भी सदियों से हमारे देश के नागरिक मानों कुम्भकरण की नींद सो रहे हैं। उन्हें इस बारे में रत्ति भर भी ज्ञान नहीं है।

टी.बी. के लक्षण हैं : खांसी, बलगम, बुखार, सीने में दर्द या कभी-कभार खांसी में खून आना। आम तौर पर यह लक्षण बहुत साधारण होते हैं। ये इतने हल्के, इतने मामूली होते हैं कि किसी को खतरे का आभास तक नहीं होता। बढ़िया डाक्टरी सलाह की जरूरत तक महसूस नहीं होती। टी.बी. का शक तक नहीं होता।

लक्षणों से ज्यादा महत्व, समय का है। अगर खांसी-बुखार के यह लक्षण लम्बे समय तक चलते रहें (एक महीने से अधिक) तो टी. बी. के सूचक हो सकते हैं।

लम्बी बीमारी के साथ अगर वजन भी घटता जाए तो फौरन टी.बी. का शक करना चाहिए।

खास कर तब, जब यह लक्षण ऐसे लोगों में हों, जिनमें टी.बी. होने का खतरा वैसे भी कुछ अधिक रहता है। जैसे:-

1. सही खाने-पीने की कमी से, गरीबी से जो लोग कमजोर हों, कुपोषण का शिकार हों।
2. जो लोग टी.बी. के मरीज के निकट सम्पर्क में अधिक समय तक रहे हों ; जिनके परिवार के किसी अन्य सदस्य को टी.बी. रही हो।
3. जो किसी नशे की लत के शिकार हों।
4. जिन लोगों में शूगर (शक्कर) (मधुमेह) (डायबिटीज) की बीमारी हो।
5. जो लोग एच.आई.वी. से ग्रस्त हों।
6. जो मनमाने ढंग से 'स्टीराएड' नामक दवाओं का दुरूपयोग करते रहे हों।

बीमारी की पहचान की कुंजी है - थोड़ी सी जानकारी। सर्तकता एवं सावधानी।

जानकारी न होना = शक न होना = बीमारी की पहचान न होना = रोग मुक्त न होना।

हरदम खांसी और बुखार,

वजन घटता हो लगातार,

इन लक्षणों का रखो ध्यान,

बीमारी की तब हो पहचान।

शक हो तो, करो न लाज,

टी.बी. का है अचूक इलाज,

समय करो तनिक न नष्ट,

योग्य डाक्टर हरेगा कष्ट।

टी.बी. का शक कब और कैसे हो ?

किसी भी लम्बी बीमारी के साथ-साथ वजन का घटना

(जैसे महीने भर से खाँसी बुखार इत्यादि)

⇩

टी.बी. का शक करें

⇩

व फौरन खोजबीन करें कि कहीं इस व्यक्ति में ऐसा कोई कारण मौजूद तो नहीं कि जिससे टी.बी. होने का खतरा बढ़ जाता है, जैसे -

⇩

1. परिवार के सदस्य को टी.बी. है (या कभी थी) ?
2. खाने पीने की कमी, कमजोरी व गरीबी ?
3. नशे की लत ?
4. शक्कर (शूगर) की बीमारी (डायबटीज़) ?
5. स्टीरायड या इम्मुरान नामक दवाओं का लम्बे समय तक दुरूपयोग ?
6. एच. आई. वी. संक्रमण होना ?

(चाहे इनमें से कोई कारण न मिले, तो भी)

टी.बी. का शक करें

⇩

1. बलगम की जांच
2. छाती का एक्स-रे
3. पढ़े-लिखे (एम.बी.बी.एस.) डॉक्टर से सलाह करें।

टी.बी. की पहचान

लम्बी खाँसी या लम्बे बुखार के साथ-साथ वजन घटना टी.बी. की निशानी हो सकती है

भारत जैसे देश में (जहां टी.बी. अधिक पाई जाती है) हर लम्बी बीमारी को शक की नज़र से देखें।

इलाज के बारे में
मैं अब बिल्कुल ठीक हूँ

अशोक की जिंदगी का हर दिन कोल्हू के बैल की तरह, सुबह आठ बजे शुरू हो कर, रात आठ बजे खत्म होता था।

एक फैक्टरी में मजदूरी करके वह पचास रूपए दिहाड़ी कमाता था। जो भी उसकी आमदनी होती उसे एक आज्ञाकारी पुत्र की तरह, अपनी मां के हवाले कर देता था।

खुद तो उसे पढ़ने-लिखने का मौका मिला नहीं था पर उसने इरादा कर लिया था कि अपने छोटे भाई-बहनों को पढ़ा-लिखा कर, किसी काबिल बना देगा। अपने परिवार के प्रति उसका इतना लगाव देखकर उसके गरीब माता-पिता फूले न समाते थे।

लेकिन किस्मत ने अशोक का साथ नहीं दिया। गरीबी की मार और कड़ी मेहनत से, उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा।

पहली बार जब अशोक मेरे पास इलाज के लिए आया, तो मैंने पाया कि पिछले छह महीनों से उसे हल्की-हल्की खांसी और हल्का-हल्का बुखार चल रहा था। इस दौरान उसका वजन सात किलो कम हो गया था। उसके बताए इन लक्षणों से मुझे शक हुआ और मैंने फौरन उसके सीने का एक्स-रे और बलगम की जांच करवाई। जिसका मुझे डर था,

वही हुआ। अशोक टी.बी. का शिकार हो गया था - उस बीमारी का जिसने भारत के न जाने कितने लोगों की जिंदगी को बर्बाद किया है।

इसके बावजूद कि टी.बी. का इलाज है और एक से एक बढ़िया दवाएँ सस्ते दरों पर हमारे देश में मिल सकती है, फिर भी यहां करीब डेढ़ करोड़ लोग इस बीमारी से पीड़ित हैं और हर मिनट एक भारतीय, बेवजह इस बीमारी से मरता है।

बदकिस्मती से अशोक एक जिम्मेदार मरीज साबित नहीं हुआ। दवाओं के इस्तेमाल करने से, कुछ हफ्तों में जैसे ही उसकी खांसी और बुखार के लक्षण कम हो जाते, वैसे ही वह दवाएं खाना बंद कर देता। नतीजा - कुछ समय बाद बीमारी के लक्षण फिर उभर आते।

अशोक की बीमारी का यह चक्र चलता रहा और चार बार यह क्रम दोहराया गया।

"लक्षण ठीक हो जाने का सीधा अर्थ होता है बीमारी से छुटकारा" - यह कथन ज्यादातर रोगों में बिल्कुल सच है। सदियों से इन्सान यही मानता आया है कि लक्षण सही हो जाएं, तो समझो रोग से मुक्ति मिल गई।

लेकिन टी.बी. के मामले में यह सच नहीं है। टी.बी. की जड़ बहुत गहरी होती है। इस बीमारी से पूरी तरह छुटकारा पाने के लिए कम से कम 6 महीने तक इलाज करना बेहद जरूरी होता है - भले ही लक्षण जल्दी ठीक हो जाएं।

महीने, दो महीने के अच्छे इलाज से टी.बी. के बाहरी लक्षण बिल्कुल ठीक हो जाते हैं। खांसी बुखार गायब हो जाते हैं। मरीज सोचता है कि अब वह बिल्कुल ठीक हो गया है। और वह दवा छोड़ बैठता है। यह उसके जीवन की सबसे भारी भूल होती है। कुछ समय

बाद बीमारी फिर उभर आती है।

भारत में 60% (संसार में 30%) टी.बी. के मरीज, अपने आप को स्वस्थ मान कर अपना इलाज बीच में ही छोड़ बैठते हैं। इस भूल का नतीजा यह होता है कि वे फिर बीमार पड़ जाते हैं। मरीजों के इस जिद्दी व्यवहार तथा ऐसी खतरनाक भूल करने का मूल कारण है :- जानकारी न होना या उन्हें जानकारी न दिया जाना।

नासमझ मरीजों द्वारा डाक्टरी सलाह न मानकर, बीच में इलाज बंद कर देना, संसार में टी.बी. पर काबू पाने की कोशिशों के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। इसी चुनौती का सामना करने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन को डाट्स नामक नया कदम उठाना पड़ा है।

दुनिया के दूसरे करीब सौ देशों की ही तरह, भारत सरकार ने भी डाट्स के कार्यक्रम को अपना लिया है। इसके तहत टी.बी. के मरीज पर कड़ी नजर रखी जाती है ताकि वह अपना इलाज पूरा करे, बीच में कोई गड़बड़ न कर सके तथा पूरी तरह स्वस्थ हो जाये। मरीज को बढ़िया दवाएं मुफ्त दी जाती हैं - 6 से 8 महीनों तक। मरीज रहता तो अपने घर पर ही है, परन्तु नजदीकी डाट्स सेन्टर में पहुंच कर दवा खाता है, एक स्वास्थ्य कर्मचारी के ठीक सामने बैठकर ; जो, मरीज के न पहुंचने पर, फौरन उसके घर पहुंच जाएगा और मरीज को दवा खिला देगा, ताकि इलाज की कड़ी टूटने न पाए। मरीज के पूरी तरह ठीक होने की जिम्मेवारी मरीज पर नहीं छोड़ी जाती, बल्कि स्वास्थ्य कर्मियों की मेहनतकश टीम पर होती है। भारत की 13% आबादी को डाट्स सेन्टर उपलब्ध कराये जा चुके हैं। जहां-जहां ये सेन्टर खुलते जा रहे हैं, वहां-वहां से मरीजों के पूरी तरह ठीक होने के आंकड़े सरकार द्वारा पेश किए जा रहे हैं।

मैंने अशोक को कई बार चेतावनी दी कि अपनी जिंदगी को

जोखिम में न डाले और दवाओं का पूरा कोर्स ले।

"मैं अब ठीक हूं, और दवाएं क्यों लूं ?" उसका नपा-तुला जवाब होता। फिर वह अपने काम में व्यस्त हो जाता। धीरे-धीरे अशोक की हालत निश्चित रूप से बिगड़ने लगी। वह इतना कमजोर हो गया कि काम करना तो दूर, उसका चलना-फिरना भी मुश्किल हो गया। एक दिन नौबत यह आई कि उसके एक मित्र को, उसे गोद में उठाकर, मेरे क्लिनिक पर लाना पड़ा। इसके अलावा बेकारी की वजह से वह बिल्कुल कंगाल भी हो चुका था।

मेरे एक दानी मित्र ने, अशोक की हर पंद्रह दिन की दवाओं का खर्चा देने का बीड़ा उठाया। अशोक ने बड़े संकोच व हिचकिचाहट के बाद इस मदद को लेना मंजूर किया।

भाग्यवश यह इंतजाम काफी कारगर साबित हुआ। एक बार फिर उसकी हालत में आश्चर्यजनक रूप से सुधार हुआ। देर आए, दुरूस्त आए - ऐसा लगा कि यह संदेश उसे ठीक से समझ आ गया था कि इलाज का पूरा कोर्स करना उसके लिए जरूरी है। ऐसा लग रहा था कि इस बार उसने निश्चय कर लिया था कि उस दयालु व्यक्ति द्वारा लगातार दी जाने वाली आर्थिक सहायता से वह दवाओं का पूरा कोर्स लेकर, स्वस्थ हो जाएगा।

इसके बाद, तपेदिक पर एक डॉक्यूमेंटरी फिल्म बनाने में मैं व्यस्त हो गया। तीन साल कैसे बीत गए, मुझे पता ही नहीं लगा।

अशोक इस बीच मेरे पास नहीं आया।

एक दिन जब मैं उसके घर के पास से गुजरा तो सोचा अशोक से मिलता ही जाऊँ। इस उधेड़-बुन में कि इतने अरसे बाद वह मुझे पहचान भी पायेगा या नहीं, मैंने उसके दरवाजे पर दस्तक दी। उसके पिता ने दरवाजा खोला। उस छोटे से अंधेरे कमरे में मैंने कदम रखा। आँखे मलते हुए, उस धुंधले माहौल में देखने की कोशिश करते हुए मैंने पूछा, "अशोक कहां है?"

उसके पिता का उत्तर था, "दो साल से ज्यादा हो गए हैं, उसे मरे हुए।"

भिन्न-भिन्न नुस्खे !

सीता राम हक्का-बक्का रह गया। उसे अपने कानों पर यकीन ही नहीं हुआ।

उसे तो सिर्फ मामूली खांसी और हल्का बुखार रहता था जिसे वह इतने समय से सिर्फ एक मौसमी तकलीफ ही समझता रहा।

अविश्वास शीघ्र ही पीड़ा और भय में बदल गया। उसे भय था बीमारी और मौत से ! पीड़ा थी अपने छोटे पुत्र और पुत्री के अनिश्चित और अंधकारमय भविष्य की।

इसी तनाव में, खोया सा वह कब अपनी साईकिल पर सवार होकर डिस्पेन्सरी से, पीपल के पेड़ तले अपने काम की जगह पर पहुंच गया, उसे पता ही नहीं चला। सबसे पहला एहसास उसे यह हुआ कि चप्पल की सिलाई करते समय उसके हाथ कांप रहे थे।

"सीता राम, मेरे जूते," एक ग्राहक की भारी आवाज ने जैसे उसे नींद से जगाकर, असलियत का एहसास कराया।

एक पुराने अखबार के कागज में जूते लपेटते हुए, उसे लगा कि उसकी आंखे नम हो आई थीं। उसने चुपचाप ग्राहक के हाथ

में वह पैकेट थमा दिया। ग्राहक बिना उसकी भीगी आंखों के देखे, वहां से चला गया।

"हे भगवान ! आदमी तो कभी नहीं राते," सीता राम ने अपने आप को समझाया। धीरे-धीरे अपने मन पर काबू पाने के बाद, उसने सोच लिया कि उसे अब क्या करना होगा।

'तपेदिक' - यह शब्द सुनते ही सीताराम तो क्या, किसी भी व्यक्ति का दिल दहल जाता; उसे पीड़ा और भय के उसी दौर से गुजरना पड़ता। इस घातक बीमारी से भारत में हर मिनट एक व्यक्ति की मौत होती है।

उसी शाम सीताराम ने करोल बाग के लिए बस पकड़ी और टी.बी. के एक मशहूर प्राइवेट अस्पताल में अपना नाम दर्ज करवा दिया। अगले एक महीने के दौरान वह नियमपूर्वक उस

अस्पताल जाता रहा।

लेकिन वहां के इलाज से उसे बिल्कुल फ़ायदा नहीं हुआ। हताश हो, उसने किसी दूसरे जानेमाने डिग्री प्राप्त डाक्टर का इलाज शुरू कर दिया। लेकिन तीन हफ्तों तक लगातार दवाएं लेने के बाद भी, उसकी खांसी और बुखार में कोई फ़र्क नहीं पड़ा।

अगले तीन महीनों में, उसने तीन और डाक्टरों से इलाज करवाया। उनमें से एक पुराना वैद्य था, दूसरा एक 'लोकल डाक्टर' और तीसरा झाड़फूंक करने वाला ओझा, जो 'धार्मिक' अनुष्ठानों और जादू-टोना करके भूत-प्रेत उतारने का दावा करता था।

लेकिन सीताराम पर न उनकी दवाओं का असर हुआ, और न ही टोने-टोटकों का।

इस समय तक उसकी थोड़ी-बहुत जमा पूंजी भी खत्म हो चुकी थी। कमजोरी के कारण वह काम करने लायक भी नहीं रह गया था। वैसे भी भारत में एक मोची ज्यादा नहीं कमा पाता। उसकी दिन भर की कमाई 40 रूपए (1 डालर) से भी शायद कम ही होती है।

सीताराम को किसी भी सरकारी अस्पताल पर भरोसा नहीं था। लेकिन मरता क्या न करता। उसके पास अब और कोई चारा ही नहीं था, क्योंकि मुफ्त इलाज तो सिर्फ सरकारी अस्पताल में ही मिल सकता था। इच्छा न होने पर भी, जबरन उसे वहां जाना पड़ा। वहां उसे रोज एक इंजैक्शन लेना पड़ता और मुट्ठी भर गोलियां निगलनी पड़ती। लेकिन उसकी हालत बिगड़ती ही

गई।

आखिरकार, उसे दिल्ली के राजन बाबू टी.बी. अस्पताल के आपातकालीन विभाग में बेहोश हालत में भर्ती करवाया गया। वह मौत से लड़ता हुआ, एक हड्डियों का ढांचा रह गया था।

यह अस्पताल एशिया में टी.बी. का सबसे बड़ा अस्पताल माना जाता है। यहां के इलाज से, भाग्यवश उसकी हालत में सुधार होने लगा और करीब 20 दिनों में, उसे पूरी तरह होश आ गया।

सीताराम से मेरी मुलाकात की कहानी यहीं से शुरू होती है। वार्ड के बिस्तर पर लेटे-लेटे वह मुझे अपनी बीमारी की गाथा सुनाता रहा और मैं उसे अपनी डायरी में नोट करता रहा। उसने अंदाजा लगाया कि मैं प्रेस का एक फोटोग्राफर हूं, इसलिए उसने बेझिझक उन डाक्टरों और अस्पतालों की जमकर आलोचना की जिन्होंने उसे कंगाल बना दिया था और जिनके इलाज से उसे रत्ती भर भी फायदा नहीं हुआ था।

उसने मुझसे सवाल किया, "मेरा क्या कसूर है ? मैंने तो पहले दिन से कोई कसर नहीं छोड़ी। कोई ऐसा दिन नहीं गया जिस दिन मैंने एक या दूसरी दवा नहीं ली।"

नई दिल्ली रेलवे स्टेशन के लकड़ी के बेंच पर बैठे, फरीदाबाद के लिए गाड़ी का इंतजार करते हुए, उसका सवाल मेरे कानों में गूंजता रहा। मैं उसके दिल की हालत समझ सकता था। एक वही नहीं था जिसकी ऐसी दशा थी। उसके जैसे लाखों टी.बी. के मरीज इसी तरह के सदमे के दौर से गुजरते हैं जबकि

वे बेचारे पूरी तरह दिलो जान से, डाक्टरी सलाह मान कर इलाज करवाते हैं। शीला रंगन तथा मुकुल उपलेकर द्वारा किये गये एक ऐतिहासिक सर्वे के अंतर्गत, महाराष्ट्र में 100 डाक्टरों से टी.बी. के इलाज के बारे पूछताछ की गई।

करीब 80 तरह के भिन्न-भिन्न नुस्खे पाये गए !

कितने दु:ख की बात है कि प्रत्येक डाक्टर टी.बी. का इलाज अपने ही अनोखे ढंग से, बेरोकटोक करता चला आ रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित निर्देशों की धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं। कोई पूछने वाला नहीं। बस अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग। देश में इलाज की अच्छी खासी

खिचड़ी बनी पड़ी है। जरा सोचें कि यह सब एक ऐसी बीमारी में हो रहा है जो कि भारत का नम्बर एक संक्रामक रोग है ! जब पढ़े-लिखे एम.बी.बी.एस. डाक्टरों की जानकारी का यह आलम है तो एक आम नागरिक की जानकारी के बारे में टिप्पणी करना तो बेकार ही होगा।

बीमार पड़ने पर 100 में से 60 मरीज इलाज के लिए सर्वप्रथम नजदीकी प्राईवेट डाक्टर के पास पहुंचते हैं। भारत के गांवों तथा शहरों में प्राईवेट क्लिनिक की आड़ में लाखों अधकचरे झोलाछाप 'डाक्टर' टी.बी. के मरीजों का सरेआम गलत ढंग से इलाज करते चले जा रहे हैं। गलत इलाज का अर्थ है :- बीमारी की सही पहचान न होना, दवाओं का चुनाव गलत होना, दवाओं की मात्रा यानी डोज़, मरीज के वजन के अनुसार गलत होना, दवा घटिया कम्पनी की होना, इलाज सही समय तक न चलाना, बार-बार दवाएं व डाक्टर बदलते फिरना या मरीज द्वारा अपना इलाज स्वयं करते जाना इत्यादि।

इलाज न करने से भी ज्यादा खतरनाक होता है - टी.बी. का गलत इलाज।

क्योंकि इससे टी.बी. का रोग एक भयंकर रूप धारण कर सकता है जिसे कहते हैं - MDR TB - मल्टी ड्रग रिजिस्टेन्ट टी.बी. - लाइलाज टी.बी. - यानि दवाएं बेअसर साबित होने लगती हैं।

आसानी से ठीक हो सकने वाले साधारण टी.बी. के अनेकों मरीज़, बेवजह गलत इलाज के चक्रव्यूह में फंसकर लाइलाज होते

जा रहे हैं। ऐसे बिगड़े हुए टी.बी. के केसों द्वारा समाज में लाइलाज टी.बी. के खतरनाक कीटाणु फैलाना, इस शताब्दी की सबसे भयानक महामारी का कारण बन सकती है।

इस दौरान सीताराम को अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। टी.बी. के कुछ चुने हुए मरीजों की राम कहानी का ब्योरा अपनी डायरी में क्रमशः आगे दर्ज करने के इरादे से, मैं एक एतवार की दोपहर सीताराम के इलाके नांगलोई में जा पहुंचा। कीचड़ भरी गलियों में मैं उस 'घने पीपल के पेड़' को ढूंढता रहा जो 'सिनेमा हाल के बाजू वाले हनुमान मंदिर के पिछवाड़े' में होना चाहिए था। और जिसके नीचे बैठ कर सीताराम जूतों की मरम्मत करता था। मैंने एक बार फिर अपनी डायरी में से उस मुड़े-तुड़े कागज के टुकड़े को निकाला तथा गौर से उसका अध्ययन किया, जिस पर मैंने अस्पताल के पलंग पर पड़े सीताराम से पूछ-पूछ कर, बड़ी सावधानी से उस पूरे इलाके का नक्शा बना रखा था। लेकिन तीन घंटों तक उन गलियों की खाक छानकर भी न तो मुझे उसके काम करने के ठिकाने का पता लगा और न ही उसके घर का। अपने जीवन में पहली बार मैंने जाना कि झुग्गी-झोंपड़ी बस्ती में एक छोटी-सी झोंपड़ी को ढूंढना एक टेड़ी खीर है।

मैं नहीं जानता सीताराम कहां और कैसा है। चार साल बीत चुके हैं। मेरी तो बस यही कामना और प्रार्थना है कि सीताराम भी हमारे देश की उस बेमौत मरने वालों की दर्दनाक गिनती में शामिल न हो गया हो।

लेकिन एक डाक्टर होने के नाते, मुझे डर है !

दिशाहीन विश्व-विज्ञान

"अम्मा पे जाऊँगी," पश्चिमी उत्तर प्रदेश की ठेठ बोली में पूजा चिल्लाई।

जोर जोर से रोती हुई पूजा वास्वत में कहना चाहती थी "मुझे अपनी दादी मां के पास जाने दो।" कर्ममार्ग में रहने वाले एक बड़े लड़के के ताकतवर हाथों की जकड़ से छूट कर वह अपनी दादी के पास जाने के लिए छटपटा रही थी।

बेघर और बेसहारा बच्चों के लिए यह कर्ममार्ग एक अनोखा घर है, जहां करीब 40 बच्चे एक परिवार की तरह पाले जाते है। यह संस्था फरीदाबाद शहर से 5 किलोमीटर दूर एक गांव में स्थित है।

उस नन्ही सी जान पूजा को कर्ममार्ग में रोता-बिलखता छोड़, मैं और उसका बूढ़ा दादा वापिस चल दिए। गांव की उस धूल भरी सड़क पर अपना पुराना स्कूटर चलाते हुए मुझे महसूस हो रहा था कि मेरे पीछे की सीट पर बैठा, पूजा का दादा मुड़ कर उसे देखता जा रहा था - जब तक वह उसकी आंखों से ओझल न हो गई। "वह इतनी छोटी है, हमारा बिछोह कैसे सहेगी?" रूंधे गले से उसने मुझसे कहा।

लेकिन शीघ्र ही उसने अपने आप पर काबू पा लिया। उसने शायद निश्चय कर लिया था कि जैसे भी हो वह पूजा को, अपने परिवार से, जिस पर बीमारी और मौत की छाया मंडरा रही थी, दूर हटा देगा, उसे जीने का मौका देगा और उसका भविष्य सुरक्षित बना

देगा।

उनके परिवार में सबसे पहले, पूजा के पिता की टी.बी. से मौत हुई। फिर उसका छोटा भाई (पूजा का चाचा) भी इसी बीमारी का शिकार हो गया। उसके बाद पूजा की मां, लम्बे समय तक जूझते-जूझते, इस भयानक बीमारी का ग्रास बन गई।

इस तरह पांच वर्ष की नन्हीं सी उम्र में ही पूजा अनाथ हो गई और अपनी दादी, कस्तूरी की गोद में, रोने के लिए छोड़ दी गई।

लेकिन बदकिस्मती से पूजा के इस कमजोर सहारे पर भी अब टी.बी. की बुरी नजर पड़ गई थी। कुछ ही समय बाद, कस्तूरी को भी गम्भीर हालत में, फरीदाबाद के टी.बी. अस्पताल में दाखिल करवाना पड़ा।

मैंने पूजा को पहली बार इसी टी.बी. वार्ड में देखा था। मरीजों, उनके सहायकों और अस्पताल के कर्मचारियों की भीड़-भाड़ से भरे इस वार्ड में वह अपनी दादी के पलंग पर ही दिखाई दी। उसकी दादी बहुत ही बुरी हालत में थी और उसके मुंह से थूक के साथ खून गिर रहा था। लेकिन उस वार्ड की गंदगी, गर्मी, मक्खियों और बीमारी लगने के डर से बेखबर, पूजा चैन की नींद सो रही थी।

इस फूल सी बच्ची को टी.बी. वार्ड जैसे दूषित स्थान पर कदापि होना ही नहीं चाहिए था।

"लेकिन मेरे पास इसके लिए और कोई ठिकाना ही नहीं है" उसके दादा ने दर्द भरी आवाज में कहा।

"हां, कर्ममार्ग के अलावा," अनायास ही मेरे मुंह से निकला।

बस फिर क्या था। पूजा का दादा उसे वहां भर्ती करवाने के लिए फौरन राज़ी हो गया।

कर्ममार्ग के क्रियाशील और स्वतंत्रता एवं प्रसन्नता के वातावरण में रहकर पूजा जल्द ही अपने दादा-दादी को भूल सी गई। अब वह यहां, और बच्चों के साथ मिल-जुल कर आराम से रहने लगी। उसकी सेहत में सुधार हो गया। वह खुश और चुलबुली दिखाई देती थी। इसके अलावा वह एक होनहार बच्ची नजर आती थी। इसलिए उसे स्कूल भेजने का भी इंतजाम कर दिया गया। जैसी उम्मीद थी, पढ़ने लिखने में भी वह होशियार निकली।

करीब एक साल बाद मेरी मुलाकात उसके दादा से फिर हुई। उत्तर प्रदेश के हाथरस जिले के छोटे से अपने गांव से वह सीधा मेरी क्लिनिक पर आ पहुंचा था। आते ही उसने मुझे बताया कि पूजा की दादी की हालत बहुत गम्भीर चल रही थी। वह अपनी आखिरी सांसें गिन रही थी।

मैंने उसे बहुत समझाने की कोशिश की कि ऐसे समय में पूजा को गांव ले जाना खतरे से खाली नहीं है। एक तो उसका ध्यान बंटेगा, पढ़ाई छूट जाएगी, दूसरे उसे बीमारी लगने का भी डर है, क्योंकि अभी हाल ही में हमने उसका टी.बी. की रोकथाम का कोर्स शुरू किया था जो करीब 3 महीने चलना था।

लेकिन वह अपनी जिद पर अड़ा रहा और बोला, "कस्तूरी बहुत बीमार है और मरने वाली है। उसकी एक ही इच्छा है - सिर्फ एक बार अपनी पोती से मिलने की।"

यह वायदा करके वह पूजा को ले गया कि कस्तूरी के..... ..... अन्तिम संस्कार के बाद, उसे वापिस छोड़ जायेगा।

लेकिन पूजा फिर कभी नहीं लौटी।

एक ख़्याल जो बार-बार मेरे दिमाग में आता है, वह यह है कि

दादा, सीता राम : 1985 में टी. बी हुई

दादी, कस्तूरी : फरीदाबाद के टी.बी. अस्पताल में

चाचा, दिगम्बर : 1996 में टी. बी. से मौत हुई

पूजा का परिवार, टी.बी. से बर्बाद

ताऊ, जय प्रकाश : 1990 में टी.बी. का इलाज किया

पिता, खेम चन्द : 1994 में टी.बी. से मौत हुई

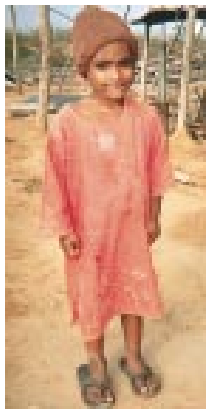

माँ, शीला देवी : जनवरी 1997 में टी.बी. से मौत हुई

पूजा को टी.बी. से बचाने वाली दवाओं का कोर्स अभी शुरू ही हुआ था, कि समय से पहले ही, उसे बंद कर देना पड़ा। भविष्य में उसे टी.बी. से बचाये रखने के लिए यह कोर्स पूरा करना बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि यह बीमारी अब तक उसके परिवार के चार सदस्यों की जान ले चुकी थी।

पूजा का परिवार तो सिर्फ एक उदाहरण है। वास्तव में हर मिनट एक भारतीय की टी.बी. से मौत होती है, अर्थात हर साल 5 लाख व्यक्ति चुपचाप इस रोग की बलि चढ़ जाते हैं। आंकड़ों के अनुसार, भारत में करीब डेढ़ करोड़ लोग इस बीमारी से पीड़ित हैं। इस प्रकार, संसार में इस रोग का एक तिहाई बोझ, भारत ही ढो रहा है।

पूरे संसार में एड्स, मलेरिया और हेपेटाइटिस-बी के मुकाबले में, सबसे अधिक मौतें टी.बी. से ही होती हैं। पूजा जैसे अधिकतर

बच्चों को अनाथ बना देने वाला, सबसे भयंकर संक्रामक रोग भी यही है।

यही नहीं, अब तो उत्तरी अमेरिका और यूरोप के विकसित देशों में भी, जहां इसका लगभग सफाया किया जा चुका था, इस बीमारी ने फिर से अपने पैर पसारने शुरू कर दिए हैं।

लेकिन कुल मिलाकर, यह बीमारी अब भी पिछड़े हुए देशों के निर्धन लोगों की ही समस्या है।

दवा बनाने वाली कंपनियों को मोटा मुनाफा विकसित अमीर देशों में होता है। संसार भर की दवाइयों की कुल बिक्री का 80% भाग तो केवल अमरीका, जापान तथा पश्चिमी यूरोप में ही खपता है। स्वभाविक है कि इन्हीं देशों के धनी लोगों की बीमारियों का इलाज खोजने की इन कंपनियों में होड़ लगी रहती है। यही वजह है कि रोज नयी-नयी दवाएं इजाद हो रही हैं - मोटापे की, गंजेपन की, सुंदरता बढ़ाने की तथा भोग-विलास की (जैस वियाग्रा)।

कैसी विडम्बना है कि भारत जैसे गरीब देशों के चोटी के वैज्ञानिक व डाक्टर भी, पश्चिमी देशों की चमक व सिक्कों की खनक से आकर्षित हो वहीं जाकर, जाने-अनजाने, उन्हीं की इस तेज दौड़ में शामिल हो जाते हैं। चूंकि टी.बी. गरीब देशों की बीमारी है, इसके बारे शोध करने की किसी को फुर्सत कहां ! भले ही कितनी जाने क्यों न चली जाएं।

मेडिसन्स सैन्ज़ फ्रंटीयर्स (MSF) के पैट्रिस टरूइलर के अध्ययन से चौंकाने वाला यह तथ्य सामने आया कि 1975 से 1997 तक के 22 वर्षों में जो 1223 नई दवाएं बाजार में उतारी गईं, उनमें से केवल 11 दवाएं गर्म देशों के गरीब लोगों की बीमारियों (Tropical Diseases) के लिए थी।

पूरे संसार में स्वास्थ्य-अनुसंधान पर 56 बिलियन डालर हर साल खर्च किये जाते हैं।

इसमें से केवल 10% अनुसंधान दुनिया की 90% जनसंख्या (जो कि गरीब है) के वास्ते होता है।

जबकि 90% अनुसंधान केवल 10% (धनी) लोगों के भले के लिए होता है !

यानि जब किसी नई दवा को इजाद व विकसित करने के बारे में निर्णय लिया जाता है, तो संसार की 90% गरीब जनसंख्या को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया जाता है !

यानि कि विश्व-विज्ञान भी धनवान विकसित देशों का गुलाम है, उन्हीं की जी हजूरी में व्यस्त है।

मैं आज तक समझ नहीं पाया कि पिछड़े देशों के इन लाखों-करोड़ों मरीजों के कष्ट का वास्तविक कारण कौन सा है ?

टी.बी. ?

या गरीबी ?

जहां एक ओर इस 8000 वर्ष प्राचीन बीमारी से ऐसा सौतेला व्यवहार जारी है, वहीं दूसरी ओर न जाने क्यों एच.आई.वी. (एड्स) को पिछले मात्र 20 सालों में ही आश्चर्यजनक प्राथमिकता दी जाने लगी है। यूनाइटेड नेशन्स के सक्रेट्री जेनरल, कॉफी अनान ने तो एड्स को युद्ध स्तर पर खत्म करने के लिए 7–10 बिलियन डालर सालाना की माँग कर डाली है।

सारी सहायता एड्स के लिए, टी.बी. के लिए ठनठन गोपाल !

टी.बी. के क्षेत्र में इस उदासीनता के परिणाम हमारे

सामने हैं :-

- आज तक टी.बी. की रोकथाम के लिए कोई बढ़िया टीका विकसित नहीं हो पाया। आज भी बी.सी.जी. (BCG) का टीका ही इस्तेमाल हो रहा है। यह 80 साल पुराना है और ज्यादा फायदेमंद नहीं है।
- बलगम की जाँच का 120 साल पुराना तरीका ही आज भी टी. बी. की पहचान का सर्वश्रेष्ठ साधन है। ऐसा कोई नया टेस्ट नहीं खोजा जा सका, जो इसकी जगह ले सके।
- पिछले 35 वर्षों में टी.बी. के इलाज की कोई नई दवा इजाद नहीं हुई। अफसोस है, किसी नई दवा के आविष्कार की कोई सम्भावना भी नज़र नहीं आती।

रोग का यह कीटाणु एशिया व अफ्रीका के लोगों के लिए कल्पनातीत कष्ट एवं पीड़ा का कारण बना हुआ है और यह क्रम लगातार चलता ही जा रहा है, क्योंकि इस रोग के शिकार अक्सर वह गरीब है जिनका जिंदा रहना या न रहना, बेमानी है। उनकी दुखांत ज़िंदगी पर न तो किसी का ध्यान जाता है, न उनके जीवन की दर्दनाक कहानी का कोई कहने वाला है, न सुनने वाला है, न लिखने वाला है और न ही इन दीन-हीन लोगों की मौत पर कोई मातम मनाने वाला है।

Refrences

1. “Balms for the poor” The Economist August 14th, 1999.
2. Helping the World’s Poorest”, ‘Sachs on Development’ by Jeffrey Sachs (Director of the Centre for International Development and Professor of International Trade at Harvard University)

Published in ‘The Economist’ August 14th, 1999.

मरीज़ के मौलिक अधिकर

आँखों में खुशी की चमक लिए, वह मुस्कुराया और बोला, "डाक्टर साहब, मैं आपके लिए एक अचकन सिलूँगा।" मुझे लगा कि वह अपने वायदे का पक्का था।

अतीक और उसकी पत्नी हमेशाा उमंग से भरे खुश नजर आते थे। बेटे के जन्म ने उनकी खुशियों में चार चाँद लगा दिए थे। उनका एक सुखी व घनिष्ठ संयुक्त परिवार था। गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश के खेड़ा नामक गांव में, दो कमरों के एक कच्चे-पक्के मकान में, सब सदस्य मिलजुल कर रहते थे।

अतीक की माँ, बड़ी पाबंदी से पांचों वक्त की नमाज पढ़ती थी। अतीक पेशे से दर्जी था। उसकी मेहनत और लगन देखकर सबको उम्मीद थी कि भविष्य में वह खूब तरक्की करेगा।

उसकी माँ को यकीन था कि यह सब अल्लाह की मेहर और मर्जी से हो रहा था।

एकाएक बदकिस्मती का पहाड़ अतीक और उसके परिवार पर टूट पड़ा, टी.बी. के रूप में। इलाज के बावजूद अतीक की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। धीरे-धीरे उसकी सेहत बिगड़ने लगी। वह इतना कमजोर हो गया कि उसे अपना काम करना भी मुश्किल हो गया।

आखिरकार, उसे अपनी दुकान बंद करनी पड़ी। अल्लाह की मर्जी के सामने सर झुकाने वाली उसकी माँ, अतीक को गाजियाबाद, मेरठ और दिल्ली के सरकारी अस्पतालों में ले जाती रही। दिल्ली के सबसे बड़े अस्पतालों में से एक राजन बाबू टी.बी. अस्पताल में भी उसे भर्ती करवाया गया।

बदकिस्मती से कहीं भी, और कोई भी इलाज, कारगर साबित नहीं हुआ।

इस संकट की घड़ी में भी, उसके परिवार की एकता में कोई फर्क नहीं आया और सबने मिलकर, बहुत हिम्मत से काम लिया। "हम अतीक का इलाज कराने में कोई कसर न उठा रखेंगे," यह था पूरे परिवार का बुलन्द इरादा।

अपने बीमार भाई की सेवा करने, उसकी शादी-शुदा बहन भी हर हफ्ते, दिल्ली से गांव पहुंचती।

धीरे-धीरे परिवार की सारी बचत, अतीक के इलाज में लग गई। दो साईकिलें, सारी सिलाई की मशीनें, मां, बीवी और भाभी के गहने, एक के बाद एक, सभी बिक गए। एक भैंस जिसको हमेशा परिवार का ही एक सदस्य माना जाता था, उसे भी बहुत बेमन से बेचना पड़ा। उसके बाद कर्ज लेने की भी नौबत आ गई। कुछ ही समय बाद, यह परिवार बहुत गम्भीरता से अपने घर को बेचने का विचार भी करने लगा।

पर घर बेचने की जरूरत नहीं पड़ी।

11 सितम्बर, 1997 को अतीक की मृत्यु हो गई।

वह अपना वायदा पूरा न कर सका। मेरी अचकन वह सिल न

सका।

अतीक के बड़े भाई का मन कड़वाहट से भरा हुआ है। टी.बी. के सरकारी अस्पतालों की बदइंतजामी के कारण कदम-कदम पर उन्हें अनेक समस्याओं से जूझना पड़ा - मरीजों की लम्बी कतारें, वहां के

कर्मचारियों का कठोर व्यवहार, एक्स-रे की मशीनों का अक्सर खराब रहना, दवाएं स्टाक में खत्म होना, हर बार कोई नया डाक्टर सीट पर बैठे मिलना, बलगम व खून की रिपोर्टों का विश्वसनीय न होना, बेवजह छुट्टी या हड़ताल घोषित हो जाना तथा बिना बात के पूरा-पूरा दिन बर्बाद हो जाना। एक अस्पताल में तो अतीक का इलाज करवाने के लिए उसे घूस भी देनी पड़ी थी।

अतीक की निराश माँ तो सिर्फ एक ही प्रश्न पूछती है, "मेरे

बेटे की मौत क्यों हुई, जबकि इस देश के नागरिक होने के नाते, हम पूरे विश्वास के साथ सरकारी अस्पतालों में गए? जबकि यह कहा जाता है कि टी.बी. का पक्का इलाज है? क्या सही इलाज हर बीमार नागरिक का मौलिक अधिकार नहीं है?"

टी.बी. के सरकारी अस्पतालों में पूरे विश्वास के साथ जाने वाले भोले-भाले मरीज को क्या मिलता है?

अक्सर वह दवाएँ नहीं मिलती जो WHO द्वारा बताई गई हैं। आम तौर पर 30–40 साल पुराने जमाने के नुस्खों की दवाएं दी जाती हैं। इनमें शामिल होती है थायासिटाज़ोन, जिसकी एक गोली का दाम सिर्फ दस पैसे है और जिसे कई देशों ने इसलिए नकार दिया है क्योंकि यह कम फायदेमंद है और इसको लेने से गलत असर भी हो जाते हैं।

कभी-कभी तो टी.बी. की असल दवाओं की कमी होने पर, उनकी जगह चुपचाप, बड़ी चालाकी से नजला, जुकाम, बुखार की और विटामिन की गोलियां अनपढ़-गंवार मरीजों को थमा दी जाती हैं।

बहुत से टी.बी. अस्पताल तो नर्क से भी बदत्तर होते हैं। वहां के वार्ड बलगम, पस और खून की गंदगी से भरे होते हैं और मौत की काली छाया चारों ओर मंडराती दिखाई देती है। वहां कोई ICU नहीं होता। डाक्टरों, कर्मचारियों और अन्य सुविधाओं की इतनी कमी होती है कि गम्भीर हालत में पड़े मरीजों की देखभाल करने वाला भी कोई नहीं होता और उन्हें घंटों भगवान की दया पर छोड़ दिया जाता है।

इस पुस्तक का लेखक, जो स्वयं इस पूरी व्यवस्था का एक अंग है, बड़े दुख के साथ कबूल करता है कि कभी-कभी कोई मरीज बिना किसी देख-भाल के, रात में ही दम तोड़ देता है और दूसरे दिन किसी कर्मचारी का ध्यान उसकी लावारिस पड़ी लाश पर जाता है !

कोई सरकारी अफसर या नेता शायद ही कभी टी.बी. के सरकारी अस्पतालों का मुआयना करने पहुंचते हों। इन अस्पतालों की अंदरूनी हालत का अंदाजा, इनकी चारदीवारी के बाहर किसी को पता ही नहीं चलता।

टी.बी. के लाखों दूसरे मरीजों की तरह, अतीक का भी कोई जीवन-बीमा नहीं था। न ही उसे किसी सरकारी एजेन्सी या गैर-सरकारी संगठन से किसी तरह की मदद मिली। भारत में तपेदिक जैसी आपदा से बड़ी संख्या में लोग मरते हैं, लेकिन यहाँ किसी ऐसी प्रभावशाली सामाजिक-सुरक्षा की व्यवस्था नहीं है जिससे किसी टी.बी. के मरीज को मदद मिल सके। उस बेसहारा व्यक्ति को अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी पड़ती है और अनगिनत परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

लेखक को डाक्टर बने 25 साल हो गए हैं। तब से अब तक इस देश में हर क्षेत्र में प्रगति हुई है - सड़कें, इमारतें, कारें, दूरसंचार की व्यवस्था, जानकारी के साधन व इन्टरनेट आदि बहुत सी उपलब्धियाँ है। यदि कहीं कोई सुधार नहीं हुआ है, वह है गरीब टी.बी. के मरीज की हालत में। प्रगति की सुई यहीं आ कर अटक गई है !

आधे-अधूरे इलाज का चक्रव्यूह

मैंने उसकी रिपोर्ट पढ़ी तो ऐसा लगा मानों मेरी जबान पर ताला ही लग गया हो।

मैंने माया देवी की ओर देखा जो मेरे क्लिनिक के लकड़ी के बेंच पर सहमी सी बैठी, अपनी छोटी-छोटी नेपाली आँखों की पलकें झपका रही थी। उसका चिंतित पति मेरे करीब खड़ा, झुक कर उसकी रिपोर्ट को एकटक देख रहा था, मानों वह भी उसे पढ़ रहा हो। उसके मुंह से बीड़ी की तेज बू आ रही थी।

माया देवी मेरे क्लिनिक में सबसे पहली बार, 1998 में आई थी। उसने अपनी 12 साल पुरानी बीमारी का लम्बा इतिहास मुझे विस्तार से सुनाया। उसके 'खराब इलाज' की लम्बी अवधि को ध्यान

में रखते हुए, मुझे शक हुआ कि कहीं उस पर टी.बी. की दवाओं का असर होना बंद तो नहीं हो चुका ! मैंने निश्चय किया कि इस केस में किसी प्रकार की ढील नहीं होनी चाहिए। इसलिए सबसे पहले मैंने उसके 'बलगम के नमूने' को 'कल्चर और सेन्सिटिविटी' टेस्ट के

लिए भिजवाया।

यह बड़े आश्चर्य और दुख की बात है कि लगभग 20 लाख आबादी वाले फरीदाबाद शहर में इस तरह की जांच की कोई सहूलियत नहीं है। इस लिए मायादेवी के बलगम का नमूना, मुझे नई दिल्ली टी. बी. सेन्टर (जो कि इस टेस्ट के लिए सबसे अच्छा सेन्टर है) भेजना

पड़ा।

लेकिन इस टेस्ट की रिपोर्ट मुझे डाक द्वारा तीन माह के लम्बे समय के बाद मिली।

मायादेवी का निर्धन परिवार, जीवन निर्वाह के कुछ बेहतर मौकों की तलाश में, 1980 में नेपाल छोड़कर भारत आ गया था। पर यहां भी किस्मत ने उनका साथ न दिया। उन्हें बहुत सी मुसीबतों का सामना करना पड़ा। बच्चों को पालने-पोसने, उनकी पढ़ाई का बंदोबस्त और सिर छिपाने की जगह की तलाश में उन्हें झुग्गी-झोंपड़ी की एक बस्ती से दूसरी बस्ती में भटकना पड़ा और खाने-कमाने के जरिए ढूंढने पड़े।

लेकिन उनकी परेशानियों का तांता यहीं खत्म नहीं हुआ। 1986 में मायादेवी, फेफड़ों की टी.बी. का शिकार हो गई। तबसे बीमारी और गरीबी ने उनका पीछा नहीं छोड़ा।

टी.बी. के इलाज का पहला कोर्स अभी पूरा भी न हो पाया था कि मायादेवी को एकाएक अपने घर, नेपाल जाना पड़ा। वहां से लौटने पर वह फिर टी.बी. की लपेट में आ गई।अपनी बची-खुची कमाई, भारत से नेपाल की लम्बी यात्रा में खत्म करने के बाद, अब उसे अपने घर की गाड़ी को किसी तरह चलाने और जीने के साधन जुटाने के लिए नए-नए तरीके ढूंढने पड़े।

पुराने डाक्टरी नुस्खों के आधार पर, मनमर्जी से उसने अपना इलाज खुद ही करना शुरू कर दिया। उनमें लिखी हुई कुछ गिनी-चुनी दवाएँ वह खरीदती; कभी 'महंगे वाला लाल कैप्सूल' छोड़ देती, तो कभी यह कह कर कि 'सफेद गोली बहुत कड़वी है' या 'पीली गोली से पेट में बहुत गैस बनती है,' उन्हें वह नहीं खरीदती। कभी-कभी पड़ोस के 'दयालु और भले' कैमिस्ट की सलाह पर 'सस्ती' और छोटी-मोटी

कम्पनी द्वारा बनी 'घटिया' दवाएँ खरीदकर खा लेती। कभी-कभार किसी 'मशहूर डाक्टर,' जिसके काबिल होने की पहचान डिग्री नहीं, बल्कि उसकी दुकान के बाहर मरीजों की लम्बी कतारें होती और जिसकी फीस भी कम होती, उसे दिखाने मायादेवी चली जाती। नीम-हकीमों के पास जाना, वह अधिक पंसद करती थी। एक तो उनके 'शर्तिया इलाज' से उसे फौरन 'आराम' मिल जाता और दूसरे वे 'फालतू के झमेलों' (जैसे बलगम की जांच व एक्स-रे इत्यादि) पर उसका समय व पैसा 'बर्बाद' न करवाते।

मायादेवी अक्सर डाक्टर और दवाएँ बदलती रहती थी। लेकिन कभी भी उसने लगकर 6 से 8 महीनों का दवाओं का कोर्स पूरा नहीं किया। किसी भी इलाज से राहत मिलते ही वह दवाएँ खाना बन्द कर देती। उसके लिए एक ही बात का महत्व था - किसी तरह बीमारी के लक्षण कम हो जाएं और उसकी हालत में थोड़ा सुधार हो जाए, ताकि वह अपने बच्चों के लिए, चूल्हा-चौका करने लायक हो जाए। बस। चाहे इलाज आधा अधूरा ही हो।

हालांकि मायादेवी के चाचा और भाई की मौत भी टी.बी. से हो चुकी थी; ठीक इसी तरह के आधे-अधूरे इलाज की बदौलत, लेकिन फिर भी मायादेवी की आँखें न खुली।

मैंने मायादेवी की ओर से अपनी नजर हटाई और एक बार फिर उसकी रिपोर्ट पढ़ी। रिपोर्ट में साफ लिखा था कि अब टी.बी. की अच्छी दवाएँ उसकी बलगम में पाये गए टी.बी. के कीटाणुओं पर बेअसर हो चुकी थी।

तकनीकी भाषा में मायादेवी का केस मल्टी ड्रग रिज़िस्टैन्ट टी. बी. यानि -MDR TB- बहुल-औषधि विरोधी टी.बी. का केस बन गया था। बोलचाल की भाषा में - लाइलाज टी.बी.।

मैं उसकी रिपोर्ट पढ़कर अवाक् रह गया था क्योंकि मुझे यकीन था कि यह रिपोर्ट वास्तव में माया देवी की मौत का पैगाम थी।

टी.बी. के इस तरह के केस जिन पर दवाईयाँ बेअसर हो जाती हैं, उनका इलाज तो अच्छे से अच्छे डाक्टरों वाले सर्वसम्पन्न अस्पतालों में भी होना सम्भव नहीं होता। दूसरी श्रेणी की दवाएँ जो ऐसे केसों में इस्तेमाल की जाती है, बहुत महंगी होने के साथ-साथ बहुत जहरीली (Toxic) तथा काफी बेअसर होती है। इसके अलावा इस इलाज की अवधि कम से कम दो साल की होती है।

मायादेवी जैसी गरीब मरीज के लिए यह इलाज करवाना तो असम्भव था। वह तो इतनी निर्धन थी कि साधारण टी.बी. में दी जाने वाली काफी सस्ती दवाएँ भी खरीदना उसके लिए मुमकिन न था।

गरीबी और जानकारी की कमी के कारण वह गलत इलाज के एक ऐसे चक्रव्यूह में फंस गई थी कि टी.बी. में दी जाने वाली दवाएं उस पर बेअसर हो चुकी थी।

टी.बी. की एक दवा के पूर्ण अनुसंधान और विकास में करीब 15 साल का समय लग जाता है और 500 मिलियन डालर का खर्चा हो जाता है लेकिन कुछेक महीनों का गलत इस्तेमाल भी इस दवा को बेअसर कर देता हैं क्योंकि इस दौरान टी.बी. के चतुर कीटाणु को मौका मिल जाता है और वह इस दवा से बच-बचाव की कोई विधि ढूंढ लेता है। यही कारण है कि टी.बी. का इलाज, कभी केवल एक दवा से नहीं किया जाता। बल्कि 5 या 4 या 3 या 2 दवाएं एक साथ देकर, किया जाता है।

आज इंसान के पास टी.बी. की केवल 5 अच्छी दवाएं हैं। निकट भविष्य में किसी नई दवा के अविष्कार की कोई विशेष संभावना भी नजर नहीं आती।

16 अक्टूबर, 1998 को माया देवी का देहांत हो गया।

उसी की तरह, भारत और नेपाल जैसे पिछड़े देशों में, लाखों मरीज, इस बीमारी के बारे में जानकारी की कमी होने के कारण, टी. बी. से बेवजह पीड़ित हैं और असमय मौत के शिकार हो रहे हैं।

जितनी भी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ टी.बी. पर काबू पाने के प्रयासों में व्यस्त हैं, उनकी असफलता का एक मात्र मूल कारण यह है कि उन्होंने सदियों पुरानी इस बीमारी के बारे में जनता जनार्दन के बीच जानकारी फैलाने के महत्व को, महत्व ही नहीं दिया।

लेखक को जो भय दिन-रात सताता रहता है वह यह है कि टी.बी. पर काबू पाने का सबसे आधुनिक प्रोग्राम डाट्स भी, कहीं इसी वजह से असफल साबित न हो जाए ! जानकारी की कमी, कहीं इस बढ़िया अभियान को भी निष्फल न कर दे !

लाइलाज टी.बी. बहुत तेज़ी से, और भयंकर रूप से फैलती जा रही है। अत: अब समय के साथ एक होड़ है। बहुत समय बर्बाद हो चुका है, लेकिन अब भी, यदि युद्ध-स्तर पर, पूरे संसार में जानकारी अभियान चलाया जाए, तो इस बाढ़ को रोका जा सकता है।

अगर इस ओर ध्यान न दिया गया और कड़ा कदम नहीं उठाया गया तो हमारी आने वाली पुश्तें शायद हमारे पुरखों के उसी पूर्व - ऐन्टीबायोटिक युग में पहुंच जाएँगी जब टी.बी. एक लाइलाज बीमारी थी और टी.बी. होने का अर्थ होता था, मौत का ठप्पा लग जाना !

छुआ छूत की भावना

प्यार का चमत्कार

उसके सभी साथी उसे 'गुरू' कहकर पुकारते थे। वे सभी रामभरोसे का बहुत आदर करते थे क्योंकि एक कुशल कारीगर होने के अलावा वह एक अच्छा इंसान भी था। आड़े वक्त अपने साथियों की मदद करने को वह हमेशा तत्पर रहता था और उनका सही मार्ग-दर्शन भी करता था। ईमानदारी और काम की लगन उसके विशेष गुण थे। वह कई वर्षों से इसी 'इलैक्ट्रोप्लेटिंग' यूनिट में काम कर रहा था, हालांकि उसे दूसरी फैक्ट्रियों से अधिक आमदनी का प्रलोभन देकर, अक्सर वहां से काम करने का बुलावा दिया जाता था। उसकी वफादारी का सबूत यही था कि जिस फैक्टरी में उसने काम सीखना शुरू किया था और जहां उसने इस धंधे के सारे गुर सीखे थे, उसे वह किसी भी लालच या प्रलोभन पर छोड़ने को तैयार नहीं था।

कुछ निजि समस्याओं के कारण रामभरोसे हाल ही में, फैक्ट्री से गैर हाज़िर रहा था।

एक दिन वह बहुत सुबह ही फैक्ट्री पहुंच कर काम में जुट गया ताकि अपनी गैर हाज़िरी की वजह से छूटे हुए काम को पूरा कर सके।

मशीने चालू कर, अभी उसने काम शुरू ही किया था कि फोरमेन वहां आ पहुंचा। मशीनों के शोरगुल में उसने हाथ के इशारे से 'गुरू' को काम रोक कर, अपने पीछे आने का संकेत दिया। दफ्तर पहुंचकर उसने कुछ पैसे 'गुरू' के हाथ में थमाए और कहा - "घर जाओ"

घर जाओ ?

गुरू को अपने कानों पर विश्वास ही न हुआ ! उसे, यानि 'गुरू' को, नौकरी से निकाला जा रहा था ?

जबकि उसने कोई कसूर नहीं किया था।

उसकी आँखें भर आईं।

उसे इस बात की चिंता नहीं थी कि उसकी नौकरी छूट गई थी। कदापि नहीं। परन्तु पिछले कुछ हफ्तों में, समय-समय पर, उसे जिस अन्याय और अपमान के दौर से गुज़रना पड़ा था, गम तो उसे उस सब का था। सबसे ज्यादा ताज्जुब की बात यह थी कि उसके किसी भी साथी ने, न तो इस अन्याय के खिलाफ़ आवाज उठाई और न

ही उसे किसी प्रकार की तसल्ली देने की कोई कोशिश की। अपना सामान बटोर कर, किसी तरह अपने आंसुओं को थामे, बिना कुछ कहे-सुने जब वह फैक्ट्री के ऊँचे लोहे के गेट से बाहर निकला, तो वे सब चुपचाप खड़े, कनखियों से उसे देखते रहे।

उस समय रामभरोसे के मन में एक ही चाह थी - अपने 6 वर्ष के बेटे, संदीप से लिपट कर खूब रोए। उसका बेटा उसके शरीर के बारह धड़कता हुआ, उसका दिल था। लेकिन इस समय वह यहां नहीं था। अभी 10 दिन पहले ही 'गुरू' की बीवी उसे हमेशा के लिए छोड़कर अपने मायके चली गई थी ओर उसके प्यारे बेटे, संदीप को भी अपने साथ ले गई थी।

रामभरोसे को इन सब कष्टों का सामना तब करना पड़ रहा था जबकि उसकी सेहत भी दिनो-दिन बिगड़ती जा रही थी।

उस बदनसीब दिन को वह कभी नहीं भूल सकता जबकि उसकी बीमारी को पहचान कर टी.बी. करार दिया गया था। उसे 'टी.बी. का मरीज' घोषित कर दिया गया था। यह लेबल, यह नया नाम, उसके लिए बहुत ही भयानक सिद्ध हुआ था। देखते ही देखते इसका मनहूस असर, उसके सभी रिश्तों को एक-एक करके बर्बाद कर रहा था।

रामभरोसे को अपना पूरा संसार ढहता हुआ दिखाई देने लगा जिसका कष्ट उसके फेफड़ों में लगी बीमारी से कहीं ज्यादा असहनीय था। इन सदमों से वह इतना टूट गया कि जिन्दा रहने की उसमें इच्छा ही नहीं रही और उसने अपनी सेहत का ख्याल रखना बिल्कुल छोड़ दिया।

उसके बाद उसकी हालत इतनी तेजी से बिगड़ी कि आखिरकार

अत्यंत गम्भीर हालत में उसे फरीदाबाद के टी.बी. अस्पताल में भर्ती करवाना पड़ा। दाखिले की औपचारिकताओं के पूरे होते ही, उसका पिता भी उसे अकेला छोड़कर घर चला गया। उसे बिल्कुल बेसहारा, दीन और निराश हालत में, वास्तव में, राम के भरोसे छोड़ दिया गया। बेचारा 'गुरू' बेबस सा अस्पताल के पलंग पर पड़ा, सूनी आंखों से छत को निहारता, मौत का इंतजार करने लगा।

भारत में इस तरह के नजारे अनहोने नहीं हैं। टी.बी. का पुराना मरीज़, अपने सगे सम्बंधियों के लिए भी एक बोझ बन जाता है। वे भी किसी तरह, अपना पिण्ड छुड़ाने के चक्कर में,

उसे किसी टी.बी. अस्पताल में दाखिल करवा कर, अस्पताल के उन कर्मचारियों की दया पर छोड़ जाते हैं, जिनसे किसी प्रकार की हमदर्दी के व्यवहार की आशा नहीं की जा सकती।

कुछ गांवों और परिवारों में टी.बी. का मरीज़ एक अछूत के समान होता है। इस बीमारी को प्रत्यक्ष नहीं, तो परोक्ष रूप से एक कलंक ही माना जाता हैं। 'तपेदिक' शब्द जबान पर लाया नहीं जाता लेकिन इसका एहसास होते ही पूरे वातावरण में एक अजीब सी, आश्चर्यजनक चुप्पी छा जाती है। कोई मरीज़ के नजदीक नहीं फटकता। यार-दोस्त उसके घर आना-जाना बंद कर देते हैं। कुछ तो उस गली तक से नहीं गुजरते। कुंए पर या धार्मिक स्थल पर जाना मरीज के लिए वर्जित सा होता है। उसके पहुंचते ही चौपाल की रौनक गायब हो जाती है, मानों सबकों सांप सूंघ गया हो। एक-एक कर, सब खिसक लेते हैं। और तो और कई बार तो अपने सगे भाई-बहन, और निकट सम्बन्धी भी नफरत करने लगते हैं। इस बीमारी से पीड़ित स्त्रियाँ छोड़ दी जाती हैं और रामभरोसे जैसे कारीगर, नौकरी से निकाल दिए जाते हैं।

समाज से बहिष्कृत होने के डर से, बहुत से मरीज इस बीमारी और उसके लक्षणों को छुपाने की कोशिश करते

हैं। कई रोगी तो इस डर से इलाज शुरू ही नहीं करते कि कोई उन्हें टी.बी. अस्पताल आते-जाते कहीं देख न ले।

'गुरू' की बर्बादी की वजह, टी.बी. के कीटाणु से कहीं अधिक थी, हमारे समाज का टी.बी. के मरीजों के प्रति इतना अमानवीय और क्रूर व्यवहार; हमारे भारतीय समाज द्वारा किसी न किसी बहाने - जाति, धर्म, रंग, कर्म, भाषा, प्रदेश कुछ और नहीं तो, आर्थिक स्थिति के भेद को लेकर किसी को भी तपाक से अछूत करार कर देना !

अस्पताल के पलंग पर रामभरोसे बहुत ही गम्भीर दशा में पड़ा था। बस अपनी आखिरी सांसें गिन रहा था। बीमारी के कारण उसका शरीर सूख कर कांटा हो गया था, मांसपेशियां सूख गई थीं, दिमाग इधर-उधर भटक रहा था, सांस उखड़ रही थी, नाड़ी कमजोर और धागे जैसी पतली हो गई थी तथा ब्लड-प्रेशर इतना कम हो गया था कि रिकार्ड करना भी मुमकिन नहीं था। सभी लक्षण स्थिति के बहुत गम्भीर होने का संकेत थे। गुरू के अंत की भविष्यवाणी करने के लिए यह जरूरी नहीं था कि डाक्टर ज्यादा प्रतिभाशाली हो। उसकी दशा देखकर कोई भी आसानी से पूर्वानुमान लगा सकता था।

अस्पताल के नियम के अनुसार डाक्टरों के वार्ड का राउण्ड होने से पहले मरीजों के सगे संबंधियों, तीमारदारों और अन्य कर्मचारियों को वार्ड से बाहर निकाल दिया गया था। बाहर अच्छी खासी भीड़ लगी हुई थी। सभी बेसब्री से राउण्ड खत्म होने का इंतजार कर रहे थे। इतने में मौका पाकर एक छोटा सा बालक चुपके-चुपके वार्ड में दाखिल हो गया। गेट पर खड़ा गार्ड

उसे पुकारता रहा, लेकिन उसकी चेतावनी और डाक्टरों की रोबदार टीम की परवाह किए बिना, वह लड़का एक पलंग से दूसरे पलंग पर, हर मरीज़ को बड़े ध्यान से देखता, आगे बढ़ता

रहा।

आखिरकार उसकी खोज खत्म हुई। वह एक पलंग के पास रूका। बड़े यत्न से उस पर चढ़ा और मरीज के गले में उसने अपनी नन्हीं बाहें डाल दी।

यह लड़का कोई और नहीं, गुरू का बेटा संदीप था - जिसकी आंखे रो-रो कर सूज कर लाल हुई पड़ी थीं। निश्चय ही अपने पिता से मिलने के लिए वह रोता रहा था।

राम भरोसे हैरान सा, फटी आँखों से उसे देख रहा था। धीरे-धीरे उसकी बुद्धि ने काम करना शुरू किया और उसे असलियत का अहसास होने लगा।

बहुत दिनों बाद, पहली बार राम भरोसे मुस्कुराया।

इस घटना के दो महीनों बाद, 22 दिसम्बर, 1996 को रामभरोसे को अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। अपने बेटे की उंगली पकड़े वह अस्पताल के लोहे के गेट से बाहर निकल गया।

अपने मरते हुए पिता को उस नन्हें बालक ने वह दे दिया था जिसकी उसे सख्त जरूरत थी, जिसकी उस बेचारे को बेहद चाह थी, जिसके लिए वह मर रहा था - प्यार !

'गुरू का ठीक हो जाना' मेरे पूरे जीवन में सीखे सभी वैज्ञानिक सिद्धान्तों के विरूद्ध था। यह शब्द वास्तव में वही था, जिसे मैंने, डॉक्टर होने के नाते, वर्षों पहले अपने शब्दकोष से निकाल बाहर कर दिया था - चमत्कार !

उस उबाऊ फिल्म का मध्यांतर हुआ तो मैंने चैन की सांस ली और सोचा कि कुछ खाया-पिया जाए। मैं उठा और तेज़ी से उस खचाखच भरे सिनेमा हाल से बाहर निकला ताकि खुली हवा में सांस ले सकूं। बाहर सड़क के दूसरी ओर पहुंचते ही, कढ़ाई में तले जा रहे लोकप्रिय ब्रेड पकौड़ों की खुशबू से मेरे मुंह में पानी भर आया।

एक दुबला-पतला सा युवक, ब्रेड पकौड़े के ठेले के पीछे खड़ा बड़ी कुशलता से, उबले आलू, मटर, बारीक कटी प्याज़ और हरी मिर्च के मिश्रण की पिट्ठी को ब्रेड के दो टुकड़ों के बीच भर कर, उन्हें बेसन के घोल में डुबो कर, कड़कड़ाते गर्म तेल की कढ़ाई में डालकर तल रहा था। गर्म तेल मे, छुन-छुन करते ब्रेड पकौड़ों को पकते देख, उस जानी पहचानी खुशबू से मेरी लार टपकने लगी।

लाल मिर्च की चटनी के साथ बड़े चाव से दो ब्रेड पकौड़े खाने और गरमा-गरम चाय का प्याला पीने के बाद, मैंने पैसा देते समय जब सिर उठाया, तो देखा कि वह रेढ़ी वाला मंद-मंद मुस्कुरा रहा था।

उसका चेहरा कुछ जाना पहचाना लगा।

अरे, "दिलीप !" अनायास ही मैंने उसे पहचान लिया था।

दिलीप मेरे पास टी.बी. के इलाज के लिए आता रहा था, लेकिन अनेकों टी.बी. के मरीजों की तरह उसने भी, बिना कोर्स पूरा किए, इलाज बीच में ही छोड़ दिया था।

बस फिर क्या था। ऐसा मौका मैं हाथ से कैसे जाने देता। आव देखा न ताव - मैं शुरू हो गया। एक तोते की तरह अपना रटा रटाया भाषण, जो अपने लापरवाह टी.बी. के मरीजों को दिन-रात देता फिरता हूं, चालू कर दिया।

मेरा उपदेश अभी पूरा भी न हो पाया था कि मेरी बेटी ने मेरी कमीज खींच कर, मेरा टेप-रिकार्ड बन्द करवा दिया। अनमने मन से मुझे दिलीप और उसके अवाक् ग्राहकों को छोड़, अपने परिवार के साथ, सिनेमा हॉल में वापस जाना पड़ा।

कुछ ही महीनों बाद, एक सुबह दिलीप अपनी माँ के साथ मेरी क्लिनिक में आया। वह दोनों सिर से पांव तक बरसात में भीगे हुए थे। दिलीप काफी बीमार और चिंतित लग रहा था।

उसके मकान-मालिक को किसी तरह, उसकी बीमारी के बारे में पता लग गया था। अत: उसने उन्हें फौरन मकान खाली करने पर मजबूर कर दिया था। उनका भीगा हुआ सामान मेरे क्लिनिक के बाहर पड़ा था - उसी चौपहिया रेढ़ी पर, जिसे वह ब्रेड पकौड़े बना कर बेचने के लिए इस्तेमाल करता था।

मैंने अपने एक डाक्टर मित्र को फोन मिलाया और किसी तरह दिलीप को फरीदाबाद के सरकारी टी.बी. अस्पताल में दाखिल करवा दिया। कम से कम माँ-बेटे को इस बरसाती मौसम में अब सिर छुपाने के लिए तो जगह मिल गई थी।

दिलीप की समस्या का मूल कारण है हमारे समाज में फैली हुई कुछ मन-गढ़ंत धारणाएँ।

आज भी संसार के कुछ पिछड़े हुए देशों में टी.बी. को भगवान का दिया श्राप माना जाता है। इस बीमारी के लगने को मौत का बुलावा माना जाता है, हालांकि यह निश्चित है कि टी.बी. से रोग-मुक्त हुआ जा सकता है। इसका इलाज है। और बहुत अच्छी दवाएं अब आसानी से मिल सकती हैं।

टी.बी. का इलाज बहुत महंगा नहीं है। भारत में इस बीमारी के पहली श्रेणी के मरीज के 6 महीने के WHO द्वारा निर्धारित पूरे इलाज की लागत करीब 1680 रूपए (40 US डालर) है।

"एक सदस्य को हो जाए तो टी.बी. पूरे परिवार को लग जाएगी" सरासर गलत है। इस मिथ्या कथन से न जाने कितने परिवार, बेवजह बर्बाद हो जाते हैं। यह कोई पुश्तैनी, जन्मजात, वंश में चलने वाला या पारिवारिक रोग नहीं है।

पिछड़े हुए समाजों में आज भी बहुत कम लोग यह जानते हैं कि टी.बी. का असली कारण होता है एक छोटा सा कीटाणु, जिसे कहते हैं 'माइकोबेक्टीरियम ट्यूबरक्लोसिस'। इस कीटाणु का स्रोत होते हैं, कुछ टी.बी. के मरीज़।

फेफड़े की टी.बी. का ऐसा मरीज़, जिसकी बलगम में कीटाणु हों, जब खांसता है तो यह कीटाणु हवा में फैल जाते हैं। निकट मौजूद लोग उसी हवा में सांस लेते हैं। हवा के जरिये यह कीटाणु सांस द्वारा उन स्वस्थ लोगों के फेफड़ों में पहुंच जाते हैं।

वहां पहुंच कर यह गढ़ जाते हैं - बीज की तरह।

जैसे एक किसान सैंकड़ों बीज बोता है पर उनमें से कुछेक ही फूटते हैं तथा पौधे बनते हैं - ठीक वैसे ही - जिन-जिन स्वस्थ लोगों में टी.बी. के कीटाणु का बीज पड़ जाता है, उन सब को यह बीमारी अवश्य लग जायेगी - ऐसा बिल्कुल नहीं है। ऐसे बीज वाले सभी लोगों में से केवल 10% को बीमारी पनपेगी। अभी या बाद में।

बाकी 90% लोगों को यह बीज कोई नुक्सान नहीं पहुंचायेगा। उनके शरीर की बीमारी से लड़ने की शक्ति, उस कीटाणु को वहीं की वहीं दबा देती है और पड़ा-पड़ा बीज धीरे-धीरे मर-खप जाता है।

यूं पड़ने को तो भारत के 40% व्यस्कों में टी.बी. का बीज पड़ ही जाता है। बीमार तो इनमे से कुछेक ही पड़ते हैं।

यह धारणा भी सरासर बेबुनियाद है कि मरीज के पास जाते ही बीमारी गले पड़ जायेगी। इसका जीता-जागता उदाहरण लेखक स्वयं है जो टी.बी. के मरीजों के साथ काफी लम्बे समय

तक निकट सम्पर्क होने के बावजूद अभी तक पूर्णतया स्वस्थ है।

"टी.बी. के हर मरीज को अस्पताल में भर्ती होकर ही उसका इलाज किया जाता है" यह भी एक गलत धारणा है। एक आम मरीज को अस्पताल में भर्ती होने की कोई जरूरत नहीं होती। उसका इलाज घर पर ही रह कर होता है।

"टी.बी. का हर मरीज बीमारी फैलाता है" यह भी असत्य है। 100 मरीजों में से केवल 25 ही ऐसे होते हैं कि जिनकी बलगम में कीटाणु निकलते हैं, जिससे दूसरों को खतरा होता है। इनकी बलगम से भी महीने दो महीने के सही इलाज से कीटाणु साफ हो जाते हैं। और तब तक संक्रमण को रोका जा सकता है अगर ये मरीज सावधानी बरतें । जैसे खांसते समय मुंह को रूमाल से ढकना, इधर-उधर न थूकना इत्यादि इत्यादि (पृष्ठ 78, 79)।

टी.बी. की निम्नलिखित श्रेणियों से तो वैसे भी दूसरों को संक्रमण का खतरा बहुत मामूली होता है :-

१. फेफड़े की टी.बी., जब बलगम में कीटाणु न हों।

२. बच्चों की टी.बी.।

३. दूसरे अंगों की टी.बी., जैसे - पेट, गुर्दे, हड्डी, दिल, गांठों, दिमाग की टी.बी. इत्यादि इत्यादि।

टी.बी. के कीटाणु हवा द्वारा फैलते हैं न कि हाथ मिलाने, पानी द्वारा या खाने-पीने से।

अमीर से अमीर और गरीब से गरीब सब को प्रकृति की एक देन समान रूप से उपलब्ध है - और वह है हवा जिसमें सब सांस लेते हैं। अत: टी.बी. किसी को भी हो सकती है।

यह कितने शर्म की बात है कि आधुनिक विकसित दूर-संचार तकनीकी के युग में भी टी.बी. के बारे में साधारण ज्ञान का प्रसारण नदारद है और टी.बी. के बारे में अज्ञानता, दिलीप जैसे मरीजों की जिंदगी तबाह कर रही है।

मैं अक्सर सोचता हूं - मनुष्य के जीवन में इस कष्ट का मूल कारण क्या है ?

टी.बी. ?

या इसके बारे में अज्ञानता ?

फरीदाबाद के टी.बी. अस्पताल में भर्ती करवाने के एक माह बाद, मेरे एक मरीज ने मुझे सूचना दी कि दिलीप अपनी बूढ़ी माँ को अकेला छोड़ सदा के लिए संसार से विदा हो गया था।

दिलीप की बूढ़ी, बेसहारा माँ को अपना पेट भरने के लिए इस वृद्धावस्था में जीवन में पहली बार काम ढूंढना पड़ा - दूसरों के झूठे बर्तन मांजने का काम।

हमारे समाज में यदि यह गलत, मनगढ़ंत और मूर्खतापूर्ण धारणाएँ प्रचलित न होती तो शायद दिलीप आज जिन्दा होता। मैं अब भी कभी-कभी उस सिनेमा-हॉल में जाता हूँ। दिलीप के ब्रेड पकौड़ों की महक और उसकी मुस्कान अब भी मेरे दिलोदिमाग में बसी हुई है। ब्रेड पकौड़े अब भी मिलते है, लेकिन उनका स्वाद वैसा नहीं रहा ..... ।

डॉक्टर व मरीज़ का रिश्ता

मरीज़ की चिट्ठी, डाक्टर के नाम

आदरणीय डॉक्टर साहब,

नमस्कार ।

कई साल पहले मेरे पिताजी को निमोनिया हो गया था। फिर अम्मा को हैजा हुआ। दोनों की जान आपके इलाज से ही बची। बाद में मेरी पत्नी का पीलिया भी आप ही ने ठीक किया था। हमारे पूरे परिवार को आप के ऊपर अटूट विश्वास होता चला गया। इसीलिये पिछले साल जब मेरी खाँसी सरकारी इलाज के बावजूद ठीक न हुई और महीनो चलती नजर आयी तो आख़िरकार मैं फिर आपकी क्लीनिक मे जा पहुँचा। आपने फौरन बलगम की जाँच व छाती का एक्स-रे कर मेरा इलाज शुरू कर दिया। आपकी दवा ने जादू का सा असर किया। मेरी 4 महीने पुरानी तकलीफ़ में एक मास भर के इलाज से काफी सुधार आ गया। आपसे दवा लेने मैं करीब 6-7 बार आया था। इसके बाद परीक्षाओं मे व्यस्त हो गया व आपको नही मिला। हालांकि मै पूरी तरह स्वस्थ महसूस नही करता था।

डॉक्टर साहब कुछ दिन बाद एक सुबह मैं कक्षा में विद्यार्थियों को पढ़ा रहा था। सोमवार का दिन था। मुझे एकाएक खाँसी उठने लगी। गले मे जलन हुई तो सोचा कि बदहजमी होगी क्योंकि उस दिन सुबह मैने गोभी के तीन पराठें खा लिये थे। लेकिन खाँसी चलती रही तथा देखते ही देखते मेरी बलगम मे बहुत खून जाने लगा।

विद्यार्थी तुरन्त मुझे नर्सिंगहोम ले गए। वहाँ फिर मेरा एक्स-रे व बलगम की जाँच हुई। डॉक्टर ने बताया कि टी.बी. है तथा बलगम मे कीटाणु हैं। अगले ही दिन आप वाली रिर्पोटें व एक्स-रे मैंने उस डॉक्टर को दिखाए। उसने मुझे बताया कि उनमें भी टी.बी. ही आयी

थी तथा आप की पर्ची में भी टी.बी. की ही दवा लिखी हुई थी।

यह जानकर मुझे बेहद दु:ख हुआ कि आपको शुरू से ही मेरी बीमारी का पता था। आप मेरा टी.बी. का ही इलाज चला रहे थे - चुपचाप !

बिना मुझे बताए !

डॉक्टर साहब आपने मुझे साफ-साफ बताया क्यों नही कि मुझे टी.बी. है ? जब आप किसी मरीज को बताओगे ही नहीं, तो क्या वह ६ महीने तक दवाई खाएगा ?

मेरे साथ भी वही हुआ। थोड़ा ठीक होने पर महीने भर में मैं दवा छोड़कर बैठ गया। फिर से बिमारी आनी ही थी- सो आ गई। वही दवाएं, वही इलाज दोबारा करना पड़ा - शुरू से। आठ महीने बाद जाकर मैं ठीक हुआ।

जब आपने मुझे इतना ही नहीं बताया कि टी.बी. है व दवा ६ महीने चलेगी तो ज़ाहिर है टी. बी. की सावधानियाँ बताने का तो सवाल ही पैदा नही होता था।

सो, उन दिनों मैं निश्चिंत होकर अपने पूरे परिवार के साथ, खिड़की दरवाजे बन्द करके, उसी कमरे में सोता रहा। बिना रूमाल से मुँह ढके खाँसता रहा व बेझिझक इधर-उधर थूकता रहा। नतीजा - मेरे दो साल के बेटे टीटू को भी टी.बी. लग गई। उसका इलाज अभी तक चालू है - 3 महीने बाकी हैं। शुक्र है, कि वह भी ठीक है।

अपनी आप बीती के द्वारा मैं आपको आपकी भूल का एहसास दिलाना चाहता हूँ ताकि किसी और परिवार को बेवजह इतना कष्ट न झेलना पड़े।

भवदीय

मास्टर दीनानाथ

डाक्टर का जवाब

प्रिय मास्टर जी,

मेरी भूल की आपको बहुत भारी कीमत चुकानी पड़ी। इसका मुझे बेहद अफसोस है व आजीवन रहेगा।

एक सच्चे शिक्षक होने के नाते आपने मेरी आँखें खोल दी हैं। मैंने संकल्प किया है कि ज्यों ही बीमारी का पता चलेगा, बिना संकोच, उसी क्षण मैं मरीज़ को यह साफ़-साफ़ बताऊँगा कि -

- उसे टी.बी. की बीमारी है।
- इलाज कम से कम 6 महीने जरूर चलेगा।
- उसे क्या-क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिएं ?

टी.बी. की पूरी जानकारी के बारे में मैंने कुछ काग़ज भी तैयार कर लिये हैं। इनको हर मरीज़ को दूँगा। एक प्रति आपको भी भेज रहा हूँ। (पेज 78-88) आपसे अनुरोध है कि टी.बी. के मरीजों का मार्गदर्शन करने में आप भी अपना व अपने विद्यार्थियों की असीम शक्ति का योगदान दें। इन काग़जों की फोटोकॉपी स्कूलों के नोट्स बोर्डों, दवा विक्रेताओं की दुकानों व चौराहों इत्यादि पर लगवा दें।

मैं इस संदेश को अखबारों, रेडियो व टेलिविज़न के माध्यम से भी आम जनता तक पहुँचाने की यथासंभव चेष्टा करता रहूँगा।

मेरी भूल का यही एक प्रायश्चित होगा।

भवदीय

डॉक्टर बढ़िया

"टी.बी. के मरीज की रामायण"

मरीज के लिए आचार - संहिता यानि मरीज क्या-क्या सावधानी बरतें ?

1. खांसते समय मुंह को हमेशा रूमाल से ढकें।
2. इस रूमाल को रोजना 15 मिनट तक पानी में उबालें और सुखाकर, फिर इस्तेमाल करें।

3. बलगम इधर-उधर न थूकें - किसी डिब्बी में ही थूकें जिसे ढक्कन लगा कर बंद रखें। 2-3 दिन के बाद इस डिब्बी में मिट्टी का तेल डालें, जला दें तथा मिट्टी खोदकर धरती में दबा दें।

4. भीड़भाड़ वाले, घुटनवाले बंद कमरों में न रूकें। ज्यादा से ज्यादा समय बाहर खुले में, खेत में, पार्क में, आँगन में या छत पर बिताएं।

5. छोटे बच्चों से दूर रहें।
6. नशे की लत छोड़ दें।
7. दवा नियम से व पूरी खाएं - बिना नागा। एक भी गोली न छोड़ें।
8. पौष्टिक आहर खाएं - दूध, हरी सब्जी, फल, दालें व अण्डा इत्यादि। मंहगे-मंहगे फलों पर पैसा बर्बाद न करें।

इन सावधानियों को बरतने की सबसे ज्यादा जरूरत होती है : फेफड़े के ऐसे मरीजों में कि जिनकी बलगम में कीटाणु निकल रहे हों।

वहम से छुटकारा

टी.बी. का इलाज है - यक़ीनन है। एक से एक बढ़िया दवाएं आ चुकी हैं।

टी.बी. की दवाएं ज्यादा महंगी नहीं हैं। आम आदमी की पहुँच से बाहर नहीं हैं।

टी.बी. का इलाज घर पर ही रह कर होता है। एक आम मरीज को अस्पताल में भर्ती होने की जरूरत नहीं होती।

टी.बी. का इलाज कम से कम 6 महीने जरूर करना चाहिए।

महीने, दो महीने के सही इलाज से टी.बी. के बाहरी लक्षण गायब हो जाते हैं। खाँसी व बुखार ठीक हो जाते हैं। मरीज सोचता है कि 'अब मैं ठीक हो गया।' और वह दवा छोड़कर बैठ जाता है। यह उसके जीवन की सबसे भारी गलती होती है क्योंकि बीमारी की जड़ तो अभी अन्दर ही है। थोड़े ही समय बाद

बीमारी फिर से उभर आती है। टी.बी का इलाज कम से कम 6 से 8 महीने में ही जाकर पूरा होता है।

टी.बी. जानलेवा नहीं होती । हाँ, दवा बीच में छोड़ देना जानलेवा होता है। टी.बी. कोई पुश्तैनी, वंश में चलने वाली या पारिवारिक बीमारी नहीं है। घबराइये मत! टी.बी. जल्दी नहीं फैलती । हाँ, किसी ऐसे लापरवाह टी.बी. के मरीज़, जिसकी बलगम में कीटाणु निकल रहे हों, के साथ लम्बे समय तक, किसी बन्द कमरे में रहने से इन्फैक्शन (संक्रमण) हो सकता है। लेकिन बाहर खुले में, आंगन में, छत पर या खेत में, मरीज़ की खाँसी से निकले हुये कीटाणुओं का घना जमावड़ा फौरन हवा के झोंके में घुल-मिलकर बेहद पतला व कमजोर पड़ जाता है। धूप भी इन कीटाणुओं का शीघ्र नाश कर देती है।

मरीज भाईयो ! सावधान ! ध्यान से सुनो !

1. अपने परिवार के सभी सदस्यों को टी.बी. की जाँच के लिए फौरन डॉक्टर के पास ले चलो।

2. आपके आस पास जिस किसी को भी लम्बे समय से खाँसी या बुखार हो तथा वजन भी घटता जाए तो उसे फौरन जाँच के लिए ले जाओ।

3. *समाज के डर से लक्षण या बीमारी को छुपाना गुनाह है। भाई मेरे छुपाओ मत इलाज करो।*
4. *पैदा होते ही हर बच्चे को एक महीने के अन्दर-अन्दर बी. सी. जी. (टी. बी. की रोकथाम) का टीका लगवाओ।*
5. *अपने मिलनेवाले दूसरे टी.बी. के मरीजों को भी समझाओ कि वे अपना इलाज हर हाल में पूरा करें। बीच में छोड़ न बैठें।*
6. *यदि आपके आस-पास कोई डॉट्स सैन्टर खुल चुका हो तो गरीब मरीज भाईयों को वहाँ ले जाकर उनका मुफ्त इलाज शुरू करवायें।*
7. *अगर विशेषज्ञों की राय में आपके फेफड़े का इलाज ऑप्रेशन से ही हो सकता हो तो ऑप्रेशन से न कतरायें।*
8. *"तीन माह तक रोज़ाना एक टीका (यानि 90 टीकों का कोर्स) लगवाने से टी.बी. जड़ से साफ हो जाती है" - यह सत्य नहीं है। टीके लगें या न लगें - इलाज कम से कम 6 से 8 महीने तक ही चलेगा।*
9. *"खाँसी-बलगम में खून आने का अर्थ है - टी.बी." यह सरासर झूठ है। क्योंकि दाँतों-मसूड़ों की खराबी, नाक की नक्सीर, टांसिल, गले की बीमारी, निमोनिया, ब्रोंकाइटिस तथा हुक्का-बीड़ी-सिग्रेट की लत इत्यादि में भी मुँह से खून आ सकता है।*
10. *टी.बी. के कुछ पुराने मरीज़ जो पूरा इलाज कर पूर्णत: स्वस्थ हो चुके हैं, खाँसी में कभी खून आ जाने पर घबरा कर, बिना सही जाँच कराए, फौरन दोबारा टी.बी. की दवा लेना शुरू कर देते हैं। यह पागलपन है - क्योंकि एक बार शुरू हो गया तो यह इलाज 6 से 8 महीने तक करना ही पड़ेगा। धैर्य से काम लें, बलगम की जाँच व एक्सरे कराएं तथा अच्छे डॉक्टर की सलाह लें। हो सकता है टी.बी. न हो।*

टी.बी. लाइलाज नहीं है। हम इसका इलाज करने में गलतियाँ कर जाते हैं

नीम हकीम खतरा - ए - जान

1. *नीम हकीम, वैद्य, क्वैक, ओझा, कैमिस्ट (दवा विक्रेता) इत्यादि से टी. बी. जैसी बीमारी का इलाज करवाने का मतलब है समय व पैसा बर्बाद करना तथा मौत को बुलावा देना।*
2. *भले ही शुरू शुरू में आराम होता नज़र आए पर वह ज्यादा दिन नही रहेगा। सम्भल जाएं ! केवल पढ़े-लिखे, डिग्री प्राप्त डाक्टर से ही इलाज करवायें।*
3. *केवल एक एम.बी.बी.एस. डॉक्टर ही बलगम व एक्स-रे की जाँच कर, बीमारी की सही पहचान कर, दवाईयों का सही चुनाव कर, उनकी सही मात्रा निर्धारित कर तथा हर 2 महीने बाद बीमारी का सही मूल्यांकन कर व उचित समय तक इलाज चला कर बीमारी को जड़ से खत्म करने में सक्षम होता है।*
4. *टेलीविज़न के चैनलों की तरह, डॉक्टर व दवाइयाँ बदलते न रहें।*

<u>खतरा : समझ लें कि खतरा है यदि 2 महीने के सही इलाज के बाबजूद:</u>

1. *लक्षण ठीक न हों - खाँसी व बुखार ज्यों का त्यों रहे ।*
2. *वज़न में कोई सुधार न हो।*
3. *बलगम में कीटाणु लगातार निकलते रहें।*
4. *छाती के एक्स-रे के दागों में कोई सुधार नज़र न आए (या वे और बिगड़ते दिखें)*

हैलो कैमिस्ट

1. *कैमिस्ट (दवा विक्रेता) से टी.बी. की दवाईयों का बिल जरूर कटवा लें।*

2. *केवल बढ़िया कम्पनी की दवा ही स्वीकार करें, जैसे - ग्लैक्सोज़, कैडिल्ला, नोवारटिस, हैक्स्ट, वोकार्ट तथा ल्यूपिन इत्यादि। किसी अंजान, लोकल, घटिया या सड़क छाप कम्पनी की दवा कभी मत लें । जान का सवाल है, मेरे भाई !*

3. *दवा बनाने व खात्मे की तारीख पढ़ लें या पढ़वा लें।*

4. *दवाईयों में कैमिस्ट द्वारा कोई फेर-बदल स्वीकार न करें।*

5. *टीका केवल सीलबन्द डिस्पोज़ेबल सिरिन्ज़ से ही लगवायें व बाद में उसे तोड़ कर फेंक दें।*

टी.बी. की दवाओं से बुरे असर : चिंता न करें

टी.बी. की दवाओं से कभी कभार कोई पेरशानी हो भी सकती है, मगर चिंता न करें।

1. *पेशाब का रंग लाल या नारंगी हो सकता है। दवा का रंग होगा, कोई बात नहीं।*

2. *शुरू में दिल मितलाना या उल्टियाँ हो सकती हैं - दो एक हफ्ते में अपने आप सही लगने लगेगा।*

3. *इनमें से अगर कोई लक्षण नजर आए, तो तुरन्त डॉक्टर को बतायें : जोड़ों में दर्द, दिखाई देने में कोई कमी, पीलिया, ज्यादा खारिश, चक्कर आना, सुनने में कमी या हाथ पैर सुन्न होना।*

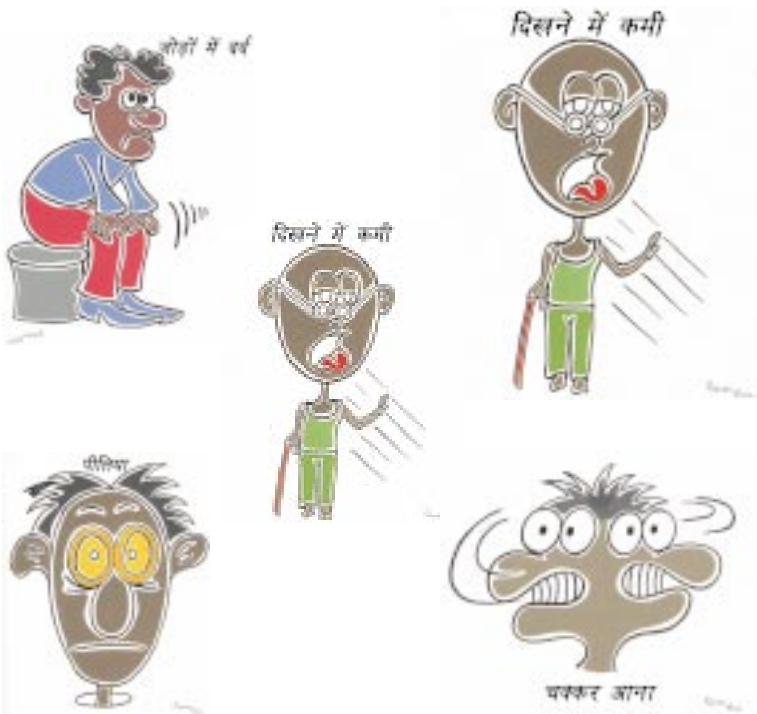

इलाज शुरू हो जाने के बाद

1. बलगम की जाँच व एक्स-रे द्वारा टी.बी. की पहचान होने पर इलाज शुरू हो जाता है। लेकिन यह दोनों टेस्ट मरीज को बार-बार करवाने पड़ेंगे - इलाज के दो महीने, चार महीने तथा छः महीने पूरे हो जाने पर।
2. पूरी तरह स्वस्थ होने पर तथा इलाज बन्द हो जाने के बाद भी यह टैस्ट आगामी 3 सालों तक हर साल करवाने चाहिये।
3. अपनी सभी रिपोर्टों, दवा की पर्चियों व एक्स-रे इत्यादि को हमेशा

सम्भाल कर अपने पास रखें। इन्हें कभी खोना नहीं चाहिये।

4. हर दो महीने बाद अपना वजन डायरी में लिखें।
5. बार-बार बलगम की जाँच अति आवश्यक होती है - जोर से खाँस कर अन्दर की बलगम टेस्ट के लिए जमा कराएँ - न कि मुँह का थूक।

डाक्टर की अंर्तआत्मा की आवाज
डाक्टर की चिट्ठी, अपने गुरू के नाम

सेवा में,

प्रोफेसर - टी.बी. एवम् छाती रोग विभाग,

मैडिकल कॉलेज व अस्पताल ।

पूज्य गुरू जी,

आपके समक्ष अपने तुच्छ तजुर्बे का वर्णन करना तो सूरज को दीपक दिखाने जैसा होगा। परन्तु एक मरीज के इस ख़त (पेज 74) ने मेरे विश्वास की नींव को हिलाकर रख दिया है तथा मुझे यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि टी.बी. की शिक्षा प्रणाली में ठोस परिवर्तन की आवश्कता है। इस विषय में कुछ विचार आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ क्योंकि आप देश की शिक्षा-नीतियों को निर्धारित करने वाली मैडिकल कांउसिल के सदस्य होने के नाते इस संदर्भ में भारी योगदान दे सकते हैं :-

1. आप द्वारा दी गई सारी शिक्षा, पूरी डॉक्टरी विद्या, टी.बी. की सारी किताबें, सारी खोजें व सारी दवाएँ धरी की धरी रह जाती हैं। जब मरीज दवाई ही न खाए ! बस दवा छोड़ कर घर बैठ जाए ! ताकि ऐसा न हो, इसके लिए मरीज को जानकारी कब, क्या और कैसे दी जाए, इसका उचित ज्ञान या अभ्यास हमारी डॉक्टरी शिक्षा में शामिल नहीं है।
2. जब मरीज को पता लगता है कि उसे टी.बी. हो गई है, वह दिन मरीज के लिये बेहद दुखदायी होता है। उस मनहूस घड़ी को वह जिन्दगी भर नहीं भूलता। उस दिन की छोटी-छोटी बातें भी उसे हमेशा याद रहती हैं। इसलिए डॉक्टर को चाहिये कि सब काम छोड़कर तुरन्त सारी जानकारी मरीज को दे ताकि यह भी उस दिन के बाकी घटनाक्रम के साथ-साथ उसके मस्तिष्क में हमेशा

के लिये रिकॉर्ड हो जाए। मरीज जब थोड़ा ठीक हो जाएगा तो कतई नहीं सुनेगा - फिर तो वह चैन की बन्सी बजाने लगेगा।

3. भारत के हर डॉक्टर को यह अभ्यास करवाया जाना चाहिये कि वह मरीज की बीमारी के साथ-साथ उसकी माली हालत को भी अच्छी तरह समझ (भांप) ले। अगर मरीज बहुत गरीब हो तो मुफ्त इलाज के लिये नज़दीकी डाट्स सैन्टर में उसका नाम दर्ज करवाए क्योंकि थोड़ा ठीक होन पर निर्धनतावश वह दवा लेना छोड़ सकता है। जिस मरीज को दो वक्त की रोटी के लाले पड़े हों उसे महंगे-महंगे टैस्ट या ताकत के टॉनिक लिखना या बेवजह रोज़ाना ग्लूकोज की बोतलें चढ़ाते रहना, तो बहुत भारी जुल्म है।

4. डॉक्टरी शिक्षा में निम्नलिखित बातों पर भी विशेष बल देने की आवश्यकता है :

(क) इलाज विश्व-स्वास्थ्य-संगठन द्वारा निर्धारित नीतियों के मुताबिक करें।

(ख) बलगम की जाँच के बिना, इलाज कभी शुरू नहीं करना चाहिए।

(ग) इलाज न करने से भी ज्यादा खतरनाक होता है, टी.बी. का अधूरा इलाज।

आपके मार्गदर्शन का अभिलाषी,

आपका आज्ञाकरी शिष्य,

डॉक्टर क, ख, ग

टी.बी. का शक कब और कैसे हो ?

किसी भी लम्बी बीमारी के साथ-साथ वजन का घटना

(जैसे महीने भर से खाँसी बुखार इत्यादि)

⇩

टी.बी. का शक करें

⇩

व फौरन खोजबीन करें कि कहीं इस व्यक्ति में ऐसा कोई कारण मौजूद तो नहीं कि जिससे टी.बी. होने का खतरा बढ़ जाता है, जैसे -

1. परिवार के सदस्य को टी.बी. है (या कभी थी) ?
2. खाने पीने की कमी, कमजोरी व गरीबी ?
3. नशे की लत ?
4. शक्कर (शूगर) की बीमारी (डायबटीज़) ?
5. स्टीरायड या इम्मुरान नामक दवाओं का लम्बे समय तक दुरूपयोग ?
6. एच. आई. वी. संक्रमण होना ?

(चाहे इनमें से कोई कारण न मिले, तो भी)

⇩

टी.बी. का शक करें

⇩

1. बलगम की जांच
2. छाती का एक्स-रे
3. पढ़े-लिखे (एम.बी.बी.एस.) डॉक्टर से सलाह करें।

टी.बी. की पहचान

लम्बी खाँसी या लम्बे बुखार के साथ-साथ वजन घटना टी.बी. की निशानी हो सकती है

भारत जैसे देश में (जहां टी.बी. अधिक पाई जाती है) हर लम्बी बीमारी को शक की नज़र से देखें।

इनमें से कौन सा मरीज टी.बी. से पीड़ित हो सकता है ?
किस-किस की टी.बी. की जाँच होनी चाहिए?

1. सुनील कुमार	(25 साल)	खाँसी व बुखार - 3 महीने से वजन घटा - 4 किलोग्राम पिछले साल हुई पिता की मौत फेफड़े की टी.बी. से
2. राम लाल	(35 साल)	खाँसी बलगम - 2 महीने से वजन गिरा - 3 किलो बहुत कमजोर व गरीब रिक्शा चालक है।
3. मीरा देवी	(50 साल)	हल्की खाँसी व बुखार - 1 महीने से कई सालों से शूगर (शक्कर) की बीमारी है।
4. सूरत सिंह	(46 साल)	बुखार व कमजोरी - 2 महीने से जोड़ो की पुरानी तकलीफ़ है व स्टीराएड के द्वारा इलाज चालू रहता है।
5. बाबी	(9 साल)	गले की गाठें - 5 महीने से कक्षा के दूसरे विद्यार्थियों से कमजोर माँ ३ साल पहले फेफड़े की टी.बी. का इलाज पूरा कर ठीक हुई।
6. शीना	(16 साल)	दाएं घुटने में दर्द व सूजन- 1 साल से दुबली पतली बुखार भी आता जाता रहता है।
7. मुर्ली सिंह	(27 साल)	खाँसी, बुखार - 1 महीने से वजन भी घट रहा है। शराबी

इन सातों की फौरन टी. बी. की जाँच होनी चाहिए।
'लक्षण क्या-क्या हैं' इससे ज्यादा महत्व इस बात का है कि वे 'कब' से परेशान कर रहे हैं? यानि 'कुल समय' कितना हुआ है बीमारी को।
(जैसे ऊपर हर मरीज में 1 महीने से ज्यादा है)
तथा वजन में गिरावट।

फेफड़ों की टी.बी. को कैसे जाना जाता है ?

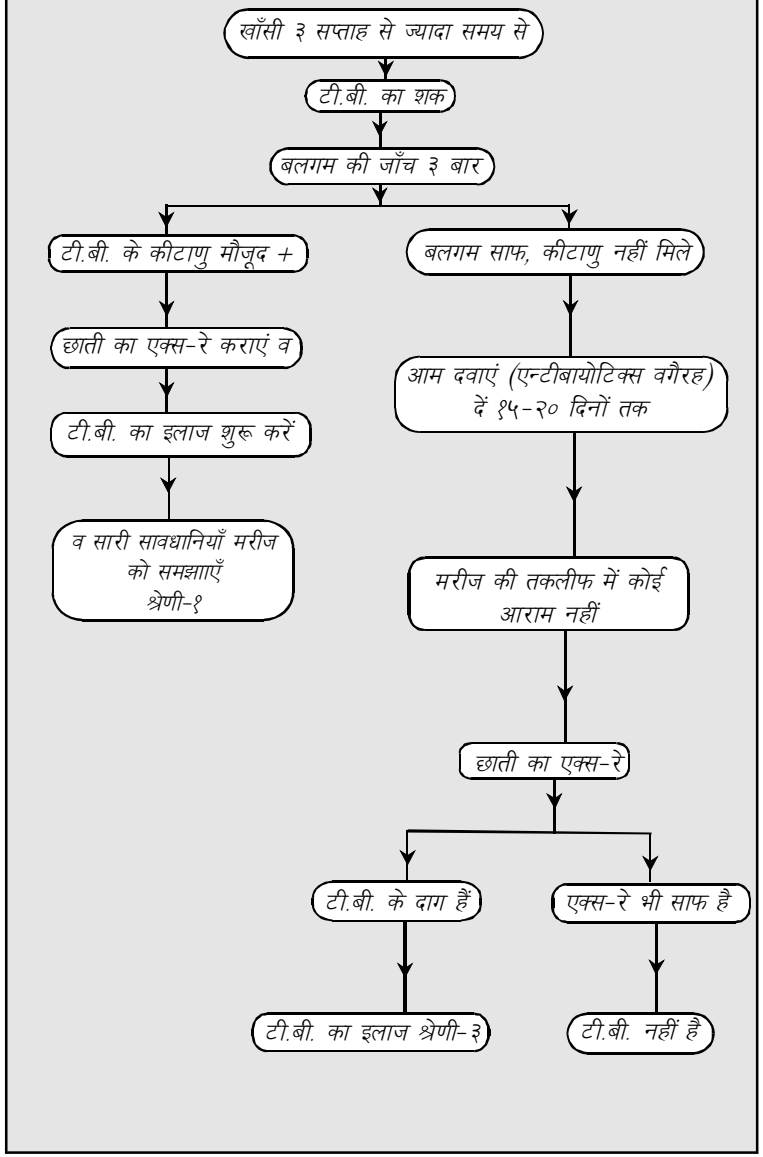

टी.बी. की पहचान के लिए टेस्ट

कैसी विडम्बना है कि एक ऐसी घातक बीमारी जो गरीब देशों में इतना कहर ढा रही है, उसकी पहचान व निदान के लिए बस गिने चुने टैस्ट ही है और वह भी बाबा आदम के जमाने के (पृष्ठ 46, 47)

टी.बी. की बीमारी ज्यादातर (80%) फेफड़े में ही होती है।

(क) फेफडे की टी.बी.

ले देकर फेफडे की टी.बी. के २ ही जरूरी टेस्ट होते हैं - बलगम की जाँच (ए.एफ.बी. स्मियर) व छाती का एक्सरे।

बलगम की जाँच

टी.बी. के कीटाणु माइक्रोस्कोप में

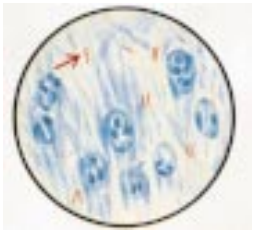

फेफड़े की टी.बी. का एक ही यकीनी सबूत है -

मरीज की बलगम में टी.बी. के कीटाणु देखे जाना - माइक्रोस्कोप से। यह टी.बी. होने का 100% सबूत है - बाकी सभी टेस्ट अधूरे हैं व घुमा फिरा कर टी.बी. होने के शक को और मज़बूत करते हैं।

बलगम देना आसान, जाँच भी आसान। महँगी-महँगी मशीनों की आवश्यकता नहीं। साथ ही मिनटों भर में तैयार हो जाती है रिपोर्ट। एक ऐसी रिपोर्ट जो कि मरीज, परिवार, समाज व डॉक्टर के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। केवल इसी से पता चलता है कि किस-किस मरीज की बलगम में कीटाणु मौजूद हैं क्योकि :

- यही मरीज समाज में बीमारी फैला सकते हैं।
- टी.बी. की सावधानियाँ (पेज 78, 79) बरतने की आवश्यकता सबसे ज्यादा, इन्हीं मरीजों को होती है।

- इन्हीं के इलाज को सबसे ज्यादा प्राथमिकता दी जाती है क्योकि : इनके इलाज से तो बीमारी फैलाने वाले स्त्रोत पर ही फौरन रोक लग जाती है।

छाती का एक्स-रे

फेफड़े की टी.बी. होने पर छाती के एक्स-रे में दाग नज़र आने लगते हैं। टी.बी. के दाग ज्यादातर फेफड़े के ऊपरी हिस्सों में पड़ते हैं। ये दाग भिन्न-भिन्न तरह के हो सकते हैं, जैसे :- बादल जैसी छाया, बीचों बीच खालीपन, कैविटी (गोल खोखली जगह), फाइब्रोसिस यानि धागे जैसे दाग या कैल्सिफिकेशन के गहरे-गहरे धब्बे। लेकिन किसी खास प्रकार का दाग टी.बी. का पक्का सबूत हो, ऐसा नहीं है। क्योंकि फेफड़े की दूसरी कई बीमारियों जैसे निमोनिया, दमा या कैंसर में भी ऐसे दाग पड़ सकते हैं। फेफड़े की टी.बी. का 100% पक्का सबूत तो केवल "बलगम में टी.बी. के कीटाणु पाए जाना" ही होता है। लेकिन हर मरीज की बलगम में तो कीटाणु नहीं होते। 100 में से केवल 25 ही ऐसे मरीज होते हैं कि जिनकी बलगम में कीटाणु निकलते हों। अत: बाकी मरीजों की बीमारी का पता हमें एक्स-रे से ही चलता है।

किन-किन परिस्थितियों में छाती के एक्स-रे का महत्व बहुत ज्यादा होता है ?

१. फेफड़े के ऐसे मरीज जिनकी बलगम में कीटाणु नहीं होते।

२. बच्चों की टी.बी.।

३. फेफड़े में पानी पड़ जाना।

४. फेफड़े में गांठे होना।

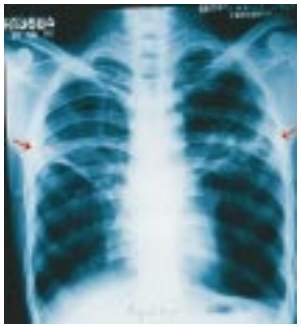

५. मरीज के रिश्तेदारों की जाँच पड़ताल में।

६. टी.बी. के इलाज के दौरान 2 महीने, 4 महीने तथा 6 महीने बीत जाने पर बार-बार ऐक्स-रे करके ये मूल्यांकन किया जाता है कि इलाज का सही असर हो भी रहा है या नहीं ?

७. दूसरे अंगों की टी.बी. से पीड़ित कुछ मरीजों में तो फेफड़े की टी. बी. का अंश भी मौजूद रहता है। ऐसे मरीजों की बीमारी की पहचान में छाती का एक्स-रे व बलगम की जाँच बहुत सहायक सिद्ध होती है।

एक अकेले एक्स-रे के मुकाबले, समय-समय पर खींचे गए अनेक एक्स-रे, कहीं ज्यादा जानकारी प्रदान करते हैं।

(बशर्ते बलगम कीटाणु-रहित हो) लम्बी खाँसी व बुखार के मरीज में अगर छाती का एक्स-रे साफ आ जाए तो समझ लीजिये कि फेफड़े की टी.बी. नहीं है।

बलगम का ए.एफ.बी. कल्चर टेस्ट केवल ऐसे मरीजों के मूल्यांकन के लिये कराया जाता है, जिनमें लाइलाज टी.बी. होने का शक पड़ जाए (यानि दवाएँ बेअसर साबित हो रही हों) (पेज 37, 55)। इसकी रिपोर्ट आने में आमतौर पर डेढ़ से तीन महीने का समय लग जाता है। इसलिये आम टी.बी. के मरीजों की पहचान में कल्चर टैस्ट का

महत्व बहुत कम होता है तथा इस मामले में बलगम की सीधी जाँच ही उत्तम होती है।

- नये 'बैक्टेक' टैस्ट में कल्चर की रिपोर्ट तीन महीने से काफी कम समय में ही उपलब्ध हो जाती है। परन्तु यह टैस्ट अभी काफी मंहगा है।
- बाजू की चमड़ी में टीके द्वारा किया गया 'मान्टूज़' टैस्ट प्राय: बच्चों की टी.बी. की पहचान में ही मददगार सिद्ध होता है।

(ख) दूसरे अंगों की टी.बी. :

टी.बी. शरीर में सिर से पैर तक किसी भी अंग में हो सकती है। मुख्यत: जैसे गाँठे, हड्डियाँ, जोड़, दिमाग, पेट, जिगर, गुर्दा, दिल या गुप्तांग इत्यादि।

रीढ़ की हड्डी में टी. बी.

पेट की टी. बी.

ऐसे कई मरीजों में टी.बी. को पहचान पाना काफी मुश्किल होता है।

हाँ कुछेक में तो दूसरे अंग की टी.बी. के साथ-साथ फेफड़े में भी टी. बी. का अंश मौजूद होता है। ऐसे मरीज तो बलगम व एक्स-रे द्वारा फौरन पहचान लिये जाते है।

दूसरे अंगों की टी.बी. में प्राय: कीटाणु कम होते हैं तथा ढूंढने से भी नहीं मिलते। अत: टी.बी. साबित होना कठिन होता है। ऐसे में उस अंग का टुकड़ा लेकर उसकी भरपूर जांच से ही टी.बी. का पता चल

पाता है। जिसे 'बायोप्सी व हिस्टोपैथालोजी रिपोर्ट' कहा जाता है।

आज के डॉक्टर (सर्जन) के लिये जाँच की लिये शरीर के किसी भी अंग से टुकड़ा ले पाना उतना मुश्किल नही रहा। अब एन्डोस्कोपी व लैप्रोस्कोपी के जरिये से तथा अल्ट्रासाउंड, एक्सरे स्क्रीनिंग, सी.टी. स्कैन या एम.आर.आई. की मदद से देखभाल कर शरीर के किसी भी अंग तक पहुँचा जा सकता है।

गांठों की टी. बी.

नये-नये टैस्ट जैसे एलाइज़ा, पी.सी.आर., जी. एल.सी., एम.एस., एच.पी.एल.सी., ए.डी.ए. व डी.एन.ए. फिंगर प्रिंटिग इत्यादि बहुत महंगे हैं व इन पर अभी शोध कार्य चल रहा है, इन पर ज्यादा भरोसा करना नासमझी है यानि नाम बड़े और दर्शन छोटे।

सब कोशिशों के बावजूद भी कई बार डॉक्टर के पास और कोई चारा नहीं रहता सिवा इसके कि वह शक के भरोसे ही टी.बी. की दवा शुरू कर दे।

दिल की झिल्ली में टी. बी.

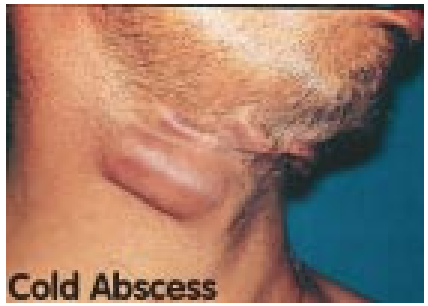

गले में टी. बी. का फोड़ा

बच्चों में टी.बी.

बच्चों में टी.बी. का पता हमें इन मोटी-मोटी बातों से चलता है :

1. बच्चे के परिवार के किसी सदस्य को फेफड़े की टी.बी. है (या थी) व उसकी बलगम में कीटाणु जाते हों (या जाते थे)
3. बच्चा सही ढंग से पनप नही रहा।
2. बच्चा दुबला व कमजोर होता जाए।
4. बच्चे को तीन हफ्ते से ज्यादा समय से खाँसी या बुखार सता रहा है। या दूसरी कोई बीमारी लम्बे समय से चल रही है।

5. पिछले दिनों बच्चे को काली खाँसी या छोटी माता (मीज़ल) हुई थी।
6. बच्चा एच.आई.वी. से ग्रस्त है।
7. उसे पैदा होते ही बी.सी.जी. (टी.बी. की रोकथाम) का टीका नहीं लगाया गया। जिसका निशान बायें कंधे पर होता है।
8. बच्चे की बाजू की चमड़ी में लगाया गया मान्टूज़ टैस्ट का टीका दो-तीन दिन में सूज गया है।
9. गर्दन या कच्छ (बगल) में

गाँठे मौजूद हैं।

10. छाती के एक्स-रे में

- गाँठों की छाया या
- फेफड़े में पानी (एफ्यूयन) दिखाई देते हैं।

11. बच्चे की रीढ़ की हड्डी में कुब हो, लम्बे समय से किसी जोड़ या हड्डी पर सूजन हो, पेट में गाँठ, गोला या पानी हो।

12. सप्ताह तक अच्छी दवांए (एन्टीबायोटिक्स इत्यादि) देने के बावजूद बच्चे के निमोनिया में सुधार होता न दिखे।

बच्चे को टी.बी. की बीमारी हममें से कोई बड़ा ही देता है - आमतौर पर बच्चे के अपने ही परिवार का कोई लापरवाह व बड़ा सदस्य, जो रोगी हो। बदले में बच्चा कभी किसी को बीमारी नहीं देता क्योंकि वह तो खाँस कर बलगम निकाल ही नहीं पाता। न बलगम निकलेगा न कीटाणु फैलेंगे। बच्चा तो बस चुपचाप समाज द्वारा दी गई सज़ा को भुगतता चला जाता है। बीमार बच्चे से किसी दूसरे को संक्रमण का कोई खास डर नहीं होता। (पृष्ठ - 71)

और हाँ- टी.बी. के सबसे भयानक व जानलेवा रूप (जैसे मैनिंजाइटिस इत्यादि) भी बेचारे बच्चों में ही अधिक पाए जाते हैं। अत: बच्चों में बीमारी को जल्द से जल्द पहचान कर इसका सही इलाज करना अति आवश्यक होता है।

भारत से टी.बी. का सफाया

भारत के डिग्री प्राप्त डाक्टर

अपनी अपनी डफली अपना अपना राग

प्रत्येक डॉक्टर टी.बी. का इलाज अपने ही अनोखे ढंग से बेरोकटोक करता चला आ रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित नियमों का ध्यान नहीं रखा जा रहा । एक सर्वे के मुताबिक महाराष्ट्र में 100 डॉक्टरों से टी.बी. के इलाज बारे में पूछताछ की गई। करीब 80 तरह के भिन्न-भिन्न नुस्खे पाए गए। और यह तब, जब कि टी.बी. भारत का नम्बर एक संक्रामक रोग है। जब डाक्टरों की जानकारी का यह आलम हो तो एक आम नागरिक की तो बात करना ही बेकार है।

हर एक मिनट में एक भारतवासी के टी. बी. से बेवजह मारे जाने के मुख्य कारण क्या हैं?

1. मरीजों द्वारा बीच में ही इलाज अधूरा छोड़ जाना, पूरा न करना। ज्यों ही थोड़ा ठीक हुए - बस इलाज छोड़ा। यह छोटी-सी बात या तो उनको बताई नहीं जाती या उनके पल्ले नहीं पड़ती कि टी.बी. का इलाज कम से कम 6 से 8 महीने चलता है - तभी बीमारी पूरी तरह ठीक होती है। (पृष्ठ - 29, 30)
2. बीमारी की पहचान में बहुत देर हो जाना : आम नागरिक को यह जानकारी नहीं है कि टी.बी. के लक्षण क्या हैं ? इसका शक जल्द से जल्द कैसे पड़ जाए। (पृष्ठ - 25-27)
3. भिन्न-भिन्न नुस्खे :
   डॉक्टरों की जानकारी बढ़ाने के लिये समय-समय पर टी.बी. की बीमारी पर कोई मीटिंग, अपडेट, भाषण या संगोष्ठी का आयोजन नहीं किया जाता। (पृष्ठ - 101, 36, 37)
4. अंधविश्वास व तरह-तरह की भ्रांतियों के चलते समाज में मरीज का तिरस्कार :
   क्योंकि जनता को सच्चाई व तथ्यों की जानकारी नहीं है। न ही इस जानकारी को फैलाने की कोई कोशिश की गई है। (पृष्ठ - 80-82, 69-75)
5. बलगम में कीटाणु वाले मरीजों से समाज में संक्रमण जारी :
   मरीज व उसके परिवार के सदस्यों को छोटी-छोटी सावधानियों की जानकारी नहीं दी जाती। जरा सी जानकारी से भी इस बीमारी को फैलने से रोका जा सकता है। (पृष्ठ - 78, 79)
6. देश की हर गली व हर नुक्कड़ पर बैठे नीम हकीम इस की रोकथाम में रोड़ा अटका रहे हैं। (पृष्ठ - 85, 21-23)
7. सरकारी डिस्पैंसरियों की हालत भी खस्ता है। (पृष्ठ - 50, 51)
8. टी.बी. अस्पतालों की अव्यवस्था।(पृष्ठ - 50-52)

9. घटिया कम्पनियों व दवाओं का सरेआम बेरोकटोक प्रचलन। (पृष्ठ - 55,56)
10. थायासिटाज़ोन नामक कमजोर व घटिया दवा का बनाया जाना व इस्तेमाल जारी रहना। (पृष्ठ - 51)

6, 7, 8, 9, 10 सरकार के आला अफसरों, नेताओं व नीतियाँ निर्धारित करने वालों में जानकारी की कमी के लक्षण हैं।

11. टी.बी. पर बस नाम मात्र रिसर्च । (पृष्ठ - 45-47)

12. टी.बी. के कीटाणु पर दवाएं बेअसर होने का सिलसिला निरन्तर बढ़ते जाना : अन्य सभी कारणों का नतीजा।

13. एच.आई.वी./एड्स के बढ़ते प्रकोप का टी.बी. की अग्नि में घी का काम करना।

सीधे-सीधे या घूम-फिर कर, उपरोक्त सभी 13 कारणों की जड़ एक ही है :
कहीं न कहीं, किसी न किसी स्तर पर,
जानकारी का अभाव होना।

एक अज्ञात दानी ने, जिसके बहुमूल्य योगदान से इस हिन्दी पुस्तक के पहले अंक का प्रकाशन सम्भव हो पाया है, भारत के सभी डेढ़ करोड़ रोगियों को हार्दिक शुभकामनाएँ भेजते हुए, जागरूकता के माध्यम से डट कर इस रोग का सामना करने का आह्वान किया है। उस दयावान के शब्दों में : माना कि.....

1. रोग ख़तरनाक है, पर मैं रोग से भी अधिक ख़तरनाक हूँ (परमहंस योगानन्द) ।

2. रोगी अपने आप को कमज़ोर व हीन कदापि न समझे क्योंकि : कुछ व्यक्ति टी-बैग के समान होते हैं; उन्हें अपनी क्षमता का पता तब तक नहीं लगता जब तक कि वे गर्म पानी में नहीं खौलते। वे कितने प्रतिभाशाली है उन्हे तब तक नही पता लगता जब तक वे परीक्षा की घड़ी से नही गुजरते। यह रोग भी केवल परीक्षा की एक घड़ी मात्र हैं। आग में तपने पर ही सोना निखरता है।

3. मेरा कोई बीता कल नहीं है - समय ने उसे मुझसे छीन लिया है; मेरा कल शायद हो न हो ; पर मेरे पास मेरा आज तो है।

"टी.बी. का प्रकोप पूरी दुनियां के लिए एक आपातकालीन स्थिति है ": विश्व स्वास्थ्य संगठन, 1993

लेखक

"भारत में फैले टी.बी. की महामारी के अंधकार को जानकारी के प्रकाश द्वारा दूर करना" ही फरीदाबाद, हरियाणा के टी.बी. रोग विशेषज्ञ डा० रमन कक्कड़ के जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। पिछले एक दशक से वह इस अभियान में कार्यरत हैं। विभिन्न अखबारों व पत्रिकाओं में टी.बी. के विषय पर आम नागरिक के लिए सरल भाषा में लेख तथा कहानियाँ लिखते चले आए हैं। जनजागरण को इस आपदा के प्रति सचेत करने के लिये स्कूलों, कॉलेजों, औद्योगिक इकाइयों, धार्मिक स्थलों, झुग्गी-झोपड़ी बस्तियों, मेलों इत्यादि में जाकर जनसमूहों को सम्बोधित करते आए हैं। इनके द्वारा टी.बी. पर बनाई गई बहुचर्चित फिल्म 'तीन बातें' जगह-जगह दिखाई जाती है, जिसे समाज के हर वर्ग द्वारा बहुत सराहा गया है। डाक्टरों की कई संस्थाओं ने इस प्रयास को अनेकों अवार्ड प्रदान कर सम्मानित किया है। इस फिल्म के कुछ अंश बी.बी.सी. वर्ल्ड न्यूज़ द्वारा जून, 2000 में अनेकों बार प्रसारित किये गए। इसके अलावा रेडियो व टेलिविज़न इत्यादि के माध्यम से भी जागृति फैलाने का निरन्तर प्रयास करते रहे हैं। कई चैनलों पर इनके साक्षात्कार तथा संदेश प्रसारित होते आए हैं - जिनमें स्टार न्यूज़, बी.बी.सी. न्यूज़, स्टार प्लस, ऑल इन्डिया रेडियो, बी.बी.सी. रेडियो, स्थानीय केबल नेटवर्क इत्यादि उल्लेखनीय है।

"For the first time ever the subject of TB has been made so simple and interesting. One can learn enough about it in 45 minutes of easy reading."

Dr. P.L. Jindal
formerly Director General Health Services, Haryana State

"Every reader will be empowered and enrolled into participating effectively in our nation's fight against this silent epidemic."

Dr. Ashok Kataria
formerly President, Indian Medical Association, Haryana State

"Doctor out to fight TB"

Press Trust of India
…… The Statesman (Jun 18)

"Any person living in a third world country who can read simple English must read this book in order to prevent TB in his family and neighbourhood."

Dr. R.L. Moga
formerly President, Indian Medical Association, Faridabad

"The scientific information ..... absolutely authentic, good enough for common man.... The stories of the individual patients... very touching... Tuberculosis spreads by air, it can attack anybody at any place."

Dr. K.C. Mohanty
Prof. & Head Chest & TB.
K.J.Somiya Medical College, Mumbai.
President - National Medical Association for AIDS Control.